श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, जयपुर

का

वर्तमान स्वरूप

१	अध्यक्ष	श्री गणपतलाल कोठारी
२.	मंत्री	श्री सरदार मल चोपडा
३.	कोषाध्यक्ष	श्री कैलाशचंद्र हीरावत
४	संयुक्त मंत्री	श्री रतनचद्र कोठारी
५	सदस्य	श्री गुमानमल चोरडिया
	"	श्री गुलावचद्र वोथरा
	"	श्री उग्रसिह वोथरा
	"	श्री सरदारमल ढड्ढा
	"	श्री मोतीचन्द्र डागा
	"	श्री वालचन्द्र वैद्य
	"	श्री कपूरचन्द जैन
	"	श्री सोभागमल श्री श्रीमाल
	"	श्री मोतीचन्द्र कर्णावट
	"	श्री भवरलाल चोरडिया
	"	श्री जगमोहनलाल सुराणा

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, जयपुर-३

सोना और सुगन्ध

प्रेरणा	श्री माणक मुनि जी म० सा० श्री श्रीचन्द्र जी म० सा०	प्रत्याख्यान प्रात स्मरणीय आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म०सा०
दिशादर्शक	महासती श्री कौशल्या म० सा० महासती श्री टीपू कवर जी म० सा०	
व्यवस्थापक	श्री सरदारमल चोपडा	
प्रधान सम्पादक	श्री बालचन्द्र वैद्य	
सह-सम्पादक	श्री नथमल गोलेछा श्री उमरावमल चोरड़िया श्री रतनचन्द्र कोठारी श्री पारसमल डागा	
प्रकाशक	मत्री श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ, जयपुर-३	

मुद्रक

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर-३

जो देवों का देव विश्वजन,
जिसके चरणों में श्रद्धानत।
उस वीर प्रभु विश्वज्योति को,
वन्दन, अभिनन्दन सतत ॥

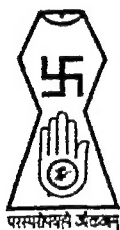
सम्पादकीय

सुहृदय पाठको के पाणि-पदमो मे 'सोना और सुगन्ध' का यह सुन्दर, सरस और सुरभित सुमन समर्पित करते हुए वडो प्रसन्नता हो रही है। सुमन कैसा खिला है? यह मूल्य विसर्जन के युग में प्रथम और अन्तिम प्रश्न है। अनुभव के प्रति कितना सौरभपूर्ण है? सहृदय पाठको के निर्णय पर छोडना ही श्रेयस्कर है।

साधारण मानव वातावरण से वनते हैं, महामानव वातावरण को वनाते हैं। वे समय और परिस्थिति का निर्माण करते हैं। इस ही हेतु वह युग निर्माता कहे जाते हैं। भगवान् महावीर ऐसे ही महामानव थे। जिनकी २५सौवी निर्वाण शताब्दी पर आयोजित अभूतपूर्व तपस्या की आयोजिका हमारे इस सकलन का एक विचार केन्द्र रही है। मुनि श्री माणकचद्र जी, श्री श्रीचन्द्र जी, महासती श्री कौशल्या जी तथा टीपू कवर जी का सुयोग और सान्निध्य हमारे प्रयास के प्रेरणा स्रोत हैं। हम इन सव गुरुजनो के प्रति श्रद्धानवत हैं। हम अपने सभी सहयोगियो, लेखको तथा अन्य समस्त सज्जनो के प्रति आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य मानते हैं।

—वैद्य

गुरुदेव



प्रात स्मरणीय बाल ब्रह्मचारी
चारित्र चूडामणि श्री १००८
श्री
हस्तीमलजी महाराज सा०
के
चरणों में सादर समर्पित
जिनके आशीर्वाद से
यह अभूतपूर्व तपस्या
का महान् कार्य
सानन्द सम्पन्न हो
सका है।





श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ,
जयपुर



सफल एवं आदर्श
तपस्विनी

श्रीमती इचरज कुंवर लुणावत



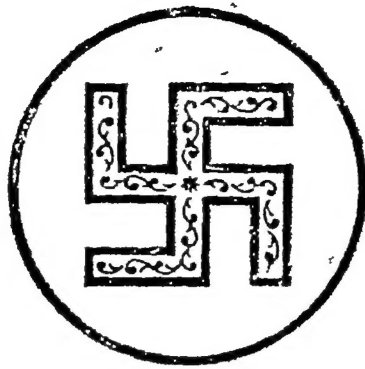
प्रथम खण्ड

शुभकामना

और

सन्देश

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणो के कथन मे, गणधर न पावे पार है।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वदना शत बार है।।



धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट
पूज्य श्री १००८ श्री आनन्द ऋषि जी

श्रीमती इचरजबाई लुणावत का १५१वा उपवास चल रहा है तथा उनका उपवास यथावत् आगे बढने वाला है। यह पढकर परम सन्तोष हुआ।

जैन-दर्शन मे तप का बहुत बडा महत्त्व है। सवर के द्वारा आश्रव तो रुक जाते हैं किन्तु पूर्व कृत कर्मों को नष्ट करने के लिए तप का विधान है। वैसे तो हरेक धर्मों मे तप को श्रेष्ठ माना है, किन्तु जैन धर्मावलम्बियो ने उसे प्रत्यक्ष जीवन मे उतार कर ससार को आज भी अपने तपोबल से आश्चर्य चकित कर दिया है। यह जैन समाज के लिए गौरव का विषय है। बाईजी की तपश्चर्या की सफलता चाहते हैं।

बम्बई



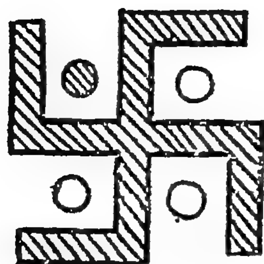
श्रद्धेय आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म० सा०

का

मगलमय संदेश

साधारण मनुष्य अन्नाधीन प्राणी है। उसे एक समय भी भोजन नही मिले तो वह शिथिल हो जाता और उसके मन की प्रसन्नता कूच कर जाती है वहा १२५–१५० दिन बिना भोजन के गर्म पानी के आधार पर रहकर प्रसन्नता अनुभव करना कितनी बडी क्षमता एव आत्मबल की बात है। आत्मा को शरीर से भिन्न जान लेने पर ही आनन्द की अनुभूति की जा सकती है। तपस्विन बहन श्रीमती इचरज कवरबाई लुणावत १३७ दिन का तप पूर्ण कर चुकी है यह बहुत प्रमोद की बात है। प्रभु कृपा मे तपस्विन अपने सकल्पानुसार विधिवत् तप पूर्ण करे और प्रभु स्मरण के साथ उनकी तपस्या शान्ति एव समाधि से सम्पन्न हो यही सदिच्छा है।

सवाई माधोपुर



परम श्रद्धेय

आचार्य १००८ श्री नानालालजी म० सा०

आपका पत्र परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म० सा० के चरणो मे श्री सघ जयपुर की वदनापूर्वक अर्ज किया। आचार्य श्री जी म० सा० ने जो भाव फरमाये वे निम्न प्रकार हैं —

श्रीमती अचरज कुवर लुणावत धर्मपत्नि श्री गुमानमलजी लुणावत का ७७वा अनशन उपवास चल रहा है यह जान कर प्रसन्नता हुई। अनशन तप करना बहुत ही कठिन कार्य है फिर भी आज के युग मे गृहस्थावस्था मे भी इतनी लम्बी तपस्या करने वाली आत्माए जोर लगा रही है वे आठ कर्मों के राजा मोह कर्म को विशेष रूप से जीतने वाली बनती है। इसके साथ ही आभ्यन्तर तप की शृखला भी यथासम्भव जुड जाय तो अवशेष कर्मों को भी हटाने मे समर्थ बन सकती है।

आपका यह तप आत्म शुद्धि मे सक्षम हो। यही शुभ भावना है।

सरदार शहर



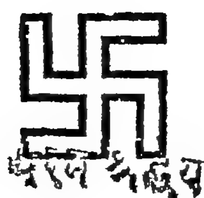
आचार्य श्री १००८ श्री तुलसी गणि म० सा०

तपस्या एक चमत्कार है। इससे आत्मा पर तो प्रभाव होता ही है, जनता पर भी इसका सीधा प्रभाव पडता है। यद्यपि जनता को प्रभावित करने के लिए तपस्या नही की जाती है, फिर भी इसका सहज प्रभाव होता है। इससे लाभ ही है।

तपस्या का महत्त्व सभी धर्मों मे है और सभी धर्मों के लोग किसी न किसी रूप मे तपस्या करते भी हैं। जैन शासन मे हजारो वर्षो से इसका अविच्छिन्न रूप चलता आ रहा है। सचमुच यह गौरव की बात है।

यह भगवान् महावीर का पच्चीससौवा निर्वाण वर्ष है। इस वर्ष समस्त जैन समाज मे विशेष तपस्याए हो रही हैं। उसमे बहिन इचरजदेवी लुणावत की तपस्या एक विशेष कडी है। तपस्या के साथ ध्यान, स्वाध्याय आदि का क्रम भी चलते रहना चाहिए। बहिन की तपस्या सानन्द सपन्न हो, यह मेरी मगल कामना है। तपस्या की परिसपन्नता पर सादगी का विशेष ध्यान रखा जाए, यह अपेक्षित है।

देहली



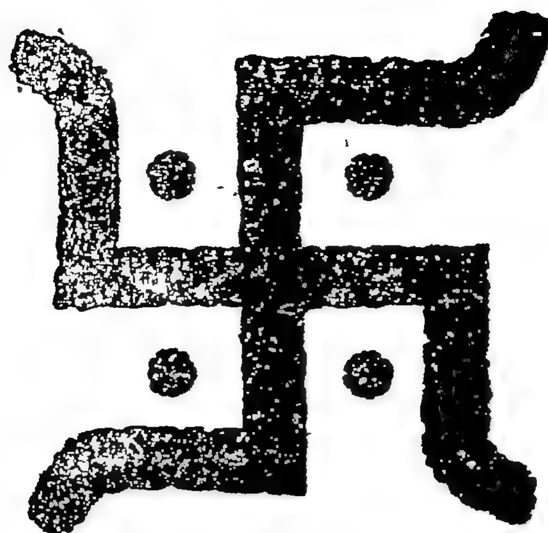
उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि

राजगृही
११-१०-७४

जैनत्व की साधना अपने चैतन्य तत्त्व की स्वच्छता एव पावनता है। स्वच्छ चिदात्मा के दर्पण मे ही दिव्य ज्योति प्रतिबिम्बित होती है। अनन्त काल का सोया हुआ देवत्व साधना के पावन क्षणो में ही जागृत होता है।

साधना के अनेक धाराओ मे तप की धारा सर्वाधिक महान् मानी गई है। वज्र साहस के व्यक्ति ही तपस्साधना-पथ के यात्री बन सकते हैं। कर्ममल की निर्जरा का प्रधान हेतु तप को माना गया है। भगवान् महावीर ने कहा था—"भवकोडि सचिय कम्म तवसा निज्जरिजइ"—अर्थात् कोटि-कोटि जन्मो का सचित, दूषित कर्ममल तप के द्वारा ही क्षीण होता है।

जयपुर संघ की अलकार स्वरूप श्रीमती इचरज कु वर लुणावत ने दीर्घ अनशन तप का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह अभिनन्दनीय है। बहन लुणावत के लिए मेरी हार्दिक मगल कामना है कि उनकी यह अलौकिक धर्मानुष्ठान शान्ति के साथ सफल हो। निर्वाण-शताब्दी के मगल प्रसग उनका यह सुदीर्घ-तप एक ऐतिहासिक भूमिका स्थापित करेगा। श्री इचरज कुँवर जैसी बहनो की धर्म-भावना की गरिमा पर ही जिन-शासन का गौरव दीप्तिमान है।



परम पूज्य गुरुदेव मरुधर केशरी प० रत्न प्रवर्तक मुनि
श्री १००८ श्री मिश्रीमलजी मा० सा०

पत्र आपका मिला समाचार जाणे। श्रीमती तपस्वी बहन इचरज कु वर लुणावत के उग्र तपस्या का वृतात पढकर अति हर्ष हुआ—ऐसी धर्मवीर महिलायें ही आत्मकल्याण तथा शासन की प्रभावना कर सकती हैं—तपस्या का केन्द्र जैन समाज मे ही है।

पाली



मुनि श्री फूलचन्द श्रमण

लुधियाना
दिनाक १०-१०-७४

श्रीमान्,

मन्त्री महोदय,

धर्म स्नेह !

आप द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। श्राविका इचरज कुँवर लुणावतजी द्वारा घोर तप करते हुए पढकर हृदय उनके प्रति आभार व्यक्त करता है। इस पदार्थवादी युग मे ऐसी तपस्विनी बहिनो के तप और धर्म निष्ठा से ही जैन धर्म की महान् धर्म-ख्याति हुई है। मैं हृदय से शासनेश प्रभु से प्रार्थी हू कि उनका तप अनुसधान निर्विघ्न रूप से पूर्ण हो और आपके श्री सघ द्वारा किया जाने वाला अभिनन्दन कार्यक्रम सफल हो।

श्री सूर्य मुनिजी म० सा०

दिनांक १-११-१९७४

आपकी ओर से वहिन इचरज कुवरवाई लुणावत की तपस्या का पत्र प्राप्त हुआ म० श्री ने सत् कामना का सदेश रूप से निम्न भाव फरमाया है—

जैन धर्म आत्म धर्म है। सम्यग् ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप आत्म धर्म की आराधना के उपाय हैं। अतः जैन धर्म मे अनादिकाल से इन चारो का महत्व है। तप आत्ममल के प्रक्षालन का अमोघ उपाय है। इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने एक सहस्र वर्ष तक तप आराधना करके सर्वतत्व प्राप्त किया था। और चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर भी इतिहास मे 'दीर्घ-तपस्वी' के रूप मे प्रसिद्ध रहे हैं। अत. आज भी जिन-शासन का अनुयायी चतुर्विध संघ अनशनादि तप दीर्घकाल तक करते हैं। हमे जयपुर से सूचना प्राप्त हुई है कि श्री इचरज बाई लुणावत ने ११० दिन का दीर्घ तपश्चरण किया और आगे बढ़ने के भाव है—यह जानकर, अतीव प्रमोद हुआ। श्री तपस्विनी वहिन का तप प्रशसनीय और अनुमोदनीय है। हमारी यह सत्कामना है—तपस्विनी वहिन का तप मगलमय हो और वे अपने इच्छित तपः समय को शान्ति से पूर्ण करके धर्म की भूरि-भूरि प्रभावना करें।

रतलाम

मुनी श्री सुशील कुमारजी म० सा०

अध्यक्ष, पचम विश्व-धर्म सम्मेलन

की

मंगल कामना

महामत्री, जयपुर स्था० जैन श्रावक संघ,

श्रीमती इचरज कौर ने १६५ दिन का उपवास कर विश्व मे नया कीर्तिमान स्थापित किया है। जैन धर्म का तपस्या क्रम नितान्त वैज्ञानिक है किन्तु उसका सहज अभ्यास करना काफी कठिन है। इचरज बहिन ने तो आज के युग मे अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भगवान् महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष मे यह सच्ची श्रद्धाञ्जलि है, इस अवसर पर जयपुर सघ ने तपोत्सव का श्रेष्ठ उपक्रम सजोया है। इससे वीतराग धर्म की प्रभावना बढेगी ऐसा मेरा विश्वास हैं।

सघ अपने उद्देश्य मे सफल हो यही कामना है। परमपूज्य आचार्ज श्री हस्तीमलजी म० को वंदन कहे।

नई दिल्ली

साध्वी प्रमुखा श्री कनक प्रभा

नई दिल्ली
१०-१०-७४

तपस्या आत्म शुद्धि का प्रकृष्ट साधन है। विशुद्धि कर्म-निर्जरा की भावना से जो तपस्या की जाती है और जिसके साथ समता योग की विशेष साधना होती है वह तपस्या प्रशस्य है। बहिनो मे तपस्या के प्रति सहज रूचि है।

जयपुर निवासिन बहिन इचरज देवी लुणावत बहुत लम्बी तपस्या कर एक आदर्श उपस्थित कर रही हैं उनकी तपस्या सबके लिए प्रेरणाप्रद हो इसी भावना के साथ।

परम श्रद्धेय
श्री सुदर्शन मुनीजी म० सा०

रोहतक मण्डी
७-११-७४

यहा पर श्री श्री १००८ श्री सुदर्शनलाल जी म० ठाणो ७ सुख शान्ति से विराजमान हैं। पत्र मिला तपस्विनी माता जी तपस्या मे जुटी हुई हैं। शरीर के ममत्व को बिल्कुल ही भुला रखा है—तपस्या की उद्दिप्त शिखा मे कोटि-कोटि भवो के सचित कर्मों को भस्म कर रही है। शरीर शोषण के साथ-साथ आत्म शोधन की प्रक्रिया का भी पूरा ध्यान रख रही है यही तो तपस्या का वास्तविक व अन्तिम लक्ष्य है। जयपुर के १९६८ के चातुर्मास मे गुरु महाराज ने माताजी को बहुत निकट से देखा है। उनकी निश्छल गुरुभक्ति सदा याद रहती है। उनकी तपोभावना पर तो आगम उत्तराध्यन मे हरिकेशी मुनि की वह वाणी याद आ जाती है जब उन्होने याज्ञिक पुरोहित और पण्डितो से कहा था कि –

तवो जोई जीवो जोइ ठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग।
कम्मेहा सजम जोग सन्ती, होम हुणामि इसिणं पसत्थ ॥

जिसका अर्थ है कि तप, ज्योति अर्थात् अग्नि है, जीव, ज्योति स्थान है, मन, वचन, काया के योग स्रुवा—आहुति देने की कडछी है, शरीर कारीषांग—अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है, कर्म—जलाए जाने वाला इन्धन है, सयम योग शान्ति पाठ है। मै इस प्रकार का यज्ञ-होम करता हू, जिसे ऋषियो ने श्रेष्ठ बताया है।

माताजी भी गृहस्थ मे रहते हुए ऐसा ही तपो यज्ञ कर रही हैं। दुर्बल से शरीर मे इतनी महान् आत्मा समाहित है ये भी महान् आश्चर्य ही है। सर्व प्रकार की सुविधाओ मे भी उत्सर्ग को परिसीमा पर माताजी पहुँच रही हैं। ये आज के भौतिक युग के लिए एक आदर्श है। इनकी सुदीर्घ तपस्या मे मानसिक व कायिक समाधि बनी रहे यही मगल कामना है। सब लुणावत परिवार भी और साथ-साथ जयपुर श्री सघ भी इनके पावन दर्शनो से निहाल हो और प्रेरणा ले यही भावना है। अन्त मे,

"चौथे आरे की प्रतिमूर्ति-पूर्ण तपोमय जिसकी देह।
सकल सुख मे रहकर भी किया तपस्या से ही स्नेह ॥
मंगलमय तव तप कर्म है आनन्दमय श्री जैन धर्म है।
श्रेयस्कर यह कार्य तुम्हारा जो स्वीकारा धर्म परम है ॥

महासती श्री १००५ श्री जस कुंवरजी म. सा.

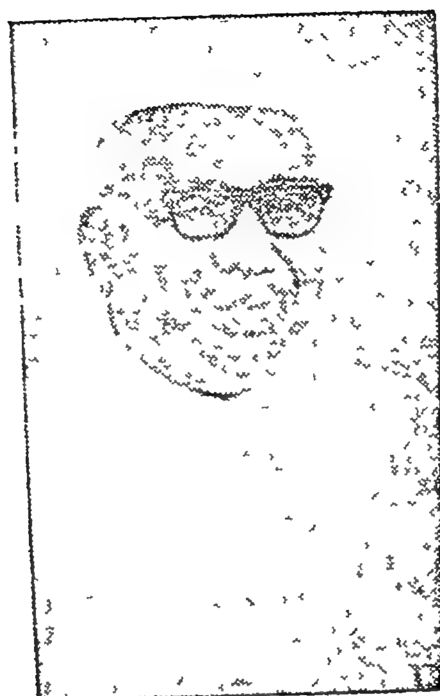
वेगू
२६-६-७४

श्रीमती इचरजी बाई लुणावत के १६० दिन का अनशन तप (उपवास) चल रहा है, यह पढकर यहा के श्रावक सघ को अत्यधिक प्रसन्नता हुई, जैन धर्म मे सम्यक् तप की महिमा मुक्त कठ से महापुरुषो ने की है, इतने समय तक तपस्या करना प्रत्येक आत्मा के लिये सरल नही है। जव महान् पुन्यवानी का उदय होता है, तव वही आत्मा तप आराधना की ओर अग्रसर होती है। मा० सा० लिखवाते है कि इचरजी बाई लुणावत आत्म लक्ष्य सहित उत्तरोतर आत्महित मे अभिवृद्धि करती रहे। विवेक युक्त जो तप किया जाता है वह तप प्रसशनोय है। जिम प्रकार सावुन मैल को खाता है उसी प्रकार मम्यक तप कर्म रूपी मैल को समाप्त करता है।

अन्त मे जिनदेव से यही प्रार्थना है कि इन तपस्विनी वहिन को ऐसी शक्ति दे कि ये लम्बे समय तक आत्मसाधना मे लीन रहे।

आपके यहा पर विराजित १००७ श्री श्री परम विदुषी महासती कौशल्याजी एव परम विदुषी १००७ श्री श्री महासतीजी टीपूजी आदि ठाणा ७ को अत्र विराजित परम विदुषी महासतीजी हृदय की असीम श्रद्धा के साथ सुख शान्ति पुछवाई है।

समस्त श्रावक सघ जयपुर, व समस्त लुणावत परिवार को महासतीजी ने धर्म अभिवृद्धि के लिये फरमाया है। श्रावक संघ वेगू की ओर से तपस्विनी वहिन का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। तपस्या का पूर कव है सो अगले पत्र मे लिखावे।



कृषि मत्री, भारत
नयी दिल्ली

प्रिय महोदय,

श्रीमती इचरज कुवर धर्मपत्नी स्व० श्री गुमान मल लुणावत का 77वा अनशन तप (उपवास) चल रहा है, और इस अवसर पर इनका अभिनन्दन किया जा रहा है, आपके दिनाक 24-9-74 के पत्र से माननीय कृषि मत्री, श्री जगजीवनरामजी को यह ज्ञात हुआ।

माननीय मत्री जी की शुभकामना है कि इनका तप सानन्द समाप्त हो।

भवदीय,
धर्मचन्द्र गोयल

KARNATAKA GOVERNOR'S SECRETARIAT

RAJ BHAVAN
BANGALORE

8 नवम्बर, 1974

प्रिय महोदय,

आपका दिनाक 28 अक्टूबर का पत्र प्राप्त हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीमती इचरज कुंवर लुणावत के अनशन तप के अवसर पर आपका सघ 'सोना और सुगन्ध' शीर्षक स्मारिका प्रकाशित कर रहा है। श्रीमती लुणावत के अनशन तप के सानन्द समापन हेतु और आपकी स्मारिका की सफलता के लिये मैं अपनी शुभकामनायें भेजता हू।

आपका

मोहनलाल सुखाड़िया

OFFICE OF THE SECRETARY TO THE
GOVERNOR, ORISSA

RAJ BHAVAN, BHUBANESWAR

The 9th October, 1974

Dear Sir,

With reference to your letter dated 1-10-74 addressed to the Governor of Orissa, I am desired to say that Governor sends his best wishes for all success of the observance of meditation by your mother Srimati Ichraj Kunwarji on the occasion of celebration of Pari–Nirvan Centenary of Bhagwan Mahavir

Yours faithfully,

Deputy Secretary to the Governor

भोपाल
दिनाक 12 अक्टूबर, 1974

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि भगवान महावीर परिनिर्वाण के 2500वे वर्ष के अवसर पर आपकी मातुश्री ने विश्व कल्याण एवं विश्व शाति हेतु कठोर तपस्या का सकल्प किया और अपने दृढ़ निश्चय तथा आत्मबल द्वारा उन्होंने अपने सकल्प को पूरा किया।

भगवान महावीर ने आत्म कल्याण हेतु सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य के श्रेष्ठ गुणो को जीवन मे आत्मसात् करने पर सर्वाधिक बल दिया है। तप अथवा इस तरह की धर्म निष्ठ साधना तथा निश्चय की दृष्टि ज्ञान और चरित्र के कलुष को समाप्त कर सम्यक् गुणो का विकास करती है तथा धर्म की प्रभावना मे वृद्धि होती है।

तपश्चर्या की कठोर साधना के प्रति अपनी हार्दिक विनम्रता व्यक्त करते हुए मैं कामना करता हूँ कि इसके द्वारा धर्म की प्रभावना मे वृद्धि हो।

प्रकाशचन्द सेठी
मुख्य मत्री, मध्यप्रदेश शासन

CHIEF MINISTER
GOVERNMENT OF HIMACHAL PRADESH
SIMLA-2

यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि महावीर परिनिर्वाण की पच्चीसवी शताब्दी के अवसर पर मानव-कल्याण हेतु चल रही तपस्या की पूर्णाहुति २२-१२-७४ को सम्पन्न होगी।

अहिंसा मानव-कल्याण की महत्त्वपूर्ण सीढी है, महावीर जी का जीवन अहिंसा के सदेश के प्रसार के लिए रहा है मुझे आशा है तपस्या की पूर्णाहुति मानव-मन को किसी भी कार्य की सफल अन्विति के लिए कार्य करने के लिए प्रेरित करेगी।

इस अवसर पर मेरी हार्दिक शुभ कामनाए लें।

यशवन्तसिंह परमार
मुख्य मन्त्री, हिमाचल प्रदेश

गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद–३८००१४ (भारत)

दिनाक १०–१०–७४

भाई श्री सरदारमलजी चोपडा

आपका १ अक्टूबर का पत्र मिला।

भगवान् महावीर परिनिर्वाण शताब्दी वर्ष के अवसर पर श्रीमती इचरज कुवर लुणावत घोर खमण तपस्या कर रही हैं, इसकी जानकारी आपके पत्र से प्राप्त हुयी।

तपस्विनी वहिन का स्वास्थ्य अच्छा रहे और उनके कार्य मे उनको सफलता मिले यही मेरी शुभकामना है और भगवान को प्रार्थना है।

आपका
मोरारजी देसाई

जिलाधीश अजमेर

दिनाक 4/5 नवम्बर, 1974

महोदय,

आपका पत्र सख्या 36 दि० 28-10-74 को प्राप्त हुआ, धन्यवाद ।

यह बडे हर्ष का विषय है कि श्रीमती इचरज कुंवर धर्मपत्नि स्वर्गीय श्री गुमानमल लुणावत 'अनशन तप' का आयोजन कर रही हैं। मै इस अवसर पर अपनी शुभ कामनायें प्रेषित करता हूँ तथा कामना करता हू कि उनका यह तप सानन्द सम्पन्न होगा। श्री संघ के तत्त्वावधान मे 'सोना और सुगन्ध' शीर्षक स्मारिका की सफलता के लिये भी मैं अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ।

भवदीय,

रणजीतसिह कूमट

जिलाधीश, अजमेर

दिनाक १४-११-७४

मादर जयवीर !

आज यहा प्राप्त हुए आपके पत्र से श्रीमती इचरज कुवरवाई लुणावत के १२५वे उपवास दिन की शुभ-सूचना प्राप्त हुई इससे सुखद आश्चर्य एव हर्षानुभूति हुई। वस्तुत: इस प्रकार की दीर्घ-तपस्या समस्त जैन-समाज के मस्तक को गौरवोन्नत करने वाली है। इतिहास के पृष्ठो पर अकित उनके ये चरणचिह्न भविष्य मे भी प्रेरणापुज ज्योतिस्तभ बन कर तपस्वियो का मार्ग-दर्शन करते रहेगे, ऐसी आशा है।

कृपया श्री नानक जैन छात्रालय, श्री स्वाध्यायी संघ, एव श्रावक सघ गुलाबपुरा को शुभ कामनाये तपस्विनी बहिन तक अवश्य पहुँचा दिरावे। शेष शुभम्।

आपका

रतनलाल जैन

गृहपति

श्री नानक जैन छात्रालय

गुलाबपुरा (राज०)

विद्वानों की दृष्टि में भगवान् महावीर

१ मैं आप लोगो मे विश्वासपूर्वक यह बात कहूगा कि महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी सिद्धान्त के लिए पूजा जाता हो तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात मे है कि उस धर्म मे अहिंसा तत्त्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने भी अधिक से अधिक विकसित किया है तो वह महावीर स्वामी थे। मैं आप लोगो से विनती करता हू कि आप महावीर स्वामी के उपदेशो को पहचाने, उन पर विचार करें और उनका अनुसरण करें।

—महात्मा गांधी

२ महावीर स्वामी ने भारत मे ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म केवल सामाजिक रूढियो के पालन करने मे ही नही किन्तु सत्य धर्म का आश्रय लेने से मिलता है। धर्म मे मनुष्य के प्रति कोई स्थायी भेद-भाव नही रह सकता। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीर की इस शिक्षा ने समाज के हृदय मे जड जमाकर बैठी हुई इस भेद-भावना को बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया और सारे देश को अपने वश मे कर लिया।

—रविन्द्रनाथ टैगोर

३ महावीर का जीवन अनतवीर्य मे ओत-प्रोत है। अहिंसा का प्रयोग उन्होंने स्वय अपने ऊपर किया और फिर सभी ओर सत्य और अहिंसा के शाश्वत धर्म को सफल बनाया। जो काल को भी चुनौती देते हैं—उन भगवान् महावीर को 'जिन' और 'वीर' कहना सार्थक है। आज के लोक को उनके आदर्श की आवश्यकता है।

—डॉ० फर्नेंडो बेल्लिनी फिलिपी

४ महावीर स्वामी ने जन्म-मरण की परम्परा पर विजय प्राप्त की थी, उनकी शिक्षा विश्व मानव के कल्याण के लिए थी। अगर आपकी शिक्षा सकीर्ण रहती तो जैन धर्म अरब आदि देशो तक न पहुँच पाता।

—आचार्य नरेन्द्रदेव

५ भगवान् महावीर द्वारा प्रचारित सत्य और अहिंसा के पालन से ही ससार सघर्ष और हिंसा से अपनी सुरक्षा कर सकता है।

—डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

६ भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे, वे तपस्वियो मे आदर्श, विचारको मे महान्, आत्मविश्वास मे अग्रसर दार्शनिक और उस समय की प्रचलित सभी विद्याओ मे पारगत थे। उन्होने अपनी तपस्या के बल पर उन विद्याओ को रचनात्मक रूप देकर जनसमूह के समक्ष उपस्थित किया।

—डॉ० अर्नेष्ट लायमेन

७. भगवान् महावीर का सन्देश किसी खास कौम या फिरके के लिए नहीं है, बल्कि समस्त ससार के लिए है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेश के अनुसार चले तो वह अपने जीवन को आदर्श बना ले। ससार मे सुख और शान्ति उसी सूरत मे प्राप्त हो सकती है जबकि हम उनके बतलाये मार्ग पर चलें।

—राजगोपालाचार्य

८ विश्व मे शान्ति स्थापना के लिए अपने प्रयत्नो के परिणामस्वरूप भारत की इस समय जो स्थिति है वह अद्वितीय है। भारत के नेताओ ने स्वतन्त्रता की लडाई मे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भगवान् महावीर के सत्य और अहिंसा प्रेम के उपदेश का अनुसरण किया जो किसी जाति एव सम्प्रदाय विशेष के लिए नही बल्कि समस्त विश्व के लिए है। महावीर ने सदियो पहले अहिंसा का पाठ पढाया। महात्मा गाधी ने भी ऐसे ही सन्देश दिये। अब आवश्यकता उन सिद्धान्तो पर अमल करने की है।

—बक्शी गुलाम मुहम्मद

९ भगवान् महावीर के उपदेश और वाणी केवल एक सम्प्रदाय के लिए धर्म पथ नही है बल्कि विश्व मानव समाज के कल्याण के लिए अभूतपूर्व नेतृत्व है। युगो के परिवर्तन के साथ ही साथ मान्यताएँ बदली है किन्तु श्री महावीर की वाणी चिरन्तन सत्य है। अपने जीवन मे उन्हे अपनाने से केवल जैनी ही नही, अजैनी भी सुखी सम्पन्न होंगे और निराशा के अन्धकार मे उन्हें अभूतपूर्व प्रकाश प्राप्त होगा।

जो व्यक्ति अधिक लाभ उठाना चाहे, उन्हें महावीर-वाणी का शोधपूर्वक चिन्तन मनन करना चाहिए। आने वाली हजारो पीढिया भी इससे निरन्तर उपकृत होती रहेंगी। अगर उनका एक सूत्र भी भलीभाति समझकर उपयोग मे लाया जाय तो जीवन की बहुमूल्य प्राप्ति होगी।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

तप

तप जीवन की ऊर्जा है, आध्यात्मिक ऊष्मा है—
जीवन को सौम्य और सर्वांगपूर्ण बनाने की साधना है

द्वितीय खण्ड



तप किस लिए ?

तपस्या के लिए तपस्या और तप के लिए तप, यह जैन धर्म की धारणा नही है। केवल तप करने के लिए ही तप करना जन धर्म की साधना नही है। जैन-दर्शन मे तप करने का अर्थ विकारो को शान्त करना, मन को विकारो से विमुक्त करना है क्रोध, अभिमान, माया, मोह, लोभ और कामना तथा वासना से मन को रहित करना जैन साधना का सर्वोत्कृष्ट तप है। मन के विकारो को दूर करने के लिये जब जिस क्रिया की आवश्यकता अनुभव करो—तभी वह क्रिया करो–वही तप की प्रक्रिया है।

तम की कारो तोड, ज्योति के,
जग-मग दीप जलाओ।
मानव जन्म तभी है सार्थक,
जब मानव बन जाओ॥

ooo



तप

हे वीर !

सन्मति, महति, वीर, मुनिपुंगव,

वर्द्धमान जिनराज, महान !

कोटि-कोटि सुर, नर मुनि करते,

तेरी महिमा का शुचि गान ॥

○ ○ ○ ○

तू करुणा का सागर, तेरी

करुणा जग का जीवन प्राण ।

तेरी वाणी में मुखरित है,

जन-जन का शाश्वत कल्याण ॥

—उपाध्याय अमर मुनि
(साभार)

भगवान महावीर उवाच

सब प्राणियो को अपनी जिन्दगी प्यारी है। सुख सबको अच्छा लगता है। वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय। सभी प्राणी जीना चाहते हैं। कुछ भी हो, सबको जीवन प्रिय है। अत किसी भी प्राणी की हिंसा न करो।

—आचाराग सूत्र, १।२।३

जो मेधावी साधक सत्य की आज्ञा मे उपस्थित रहता है, वह मार-मृत्यु के प्रवाह को तैर जाता है। —आचाराग सूत्र, १।३।३

सत्य-समस्त भावो-विषयो का प्रकाश करने वाला है। सत्य ही भगवान है।

—प्रश्नव्याकरण सूत्र, २।२

अदत्तादान (चोरी) अपयश करने वाला अनार्य कर्म है। यह सभी भले आदमियो द्वारा सदैव निंदनीय है। —प्रश्नव्याकरण सूत्र, २।३

अस्तेय व्रत का साधक बिना किसी की अनुमति के, और तो क्या, दात साफ करने के लिए एक तिनका भी नहीं लेता। —उत्तराध्ययन सूत्र, १६।२८

ब्रह्मचर्य—उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। —प्रश्नव्याकरण सूत्र, २।४

परिग्रह रूप वृक्ष के तने हैं—लोभ, क्लेश, कषाय, चिंता रूपी सैकडो ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाए हैं। —प्रश्नव्याकरण, सूत्र १।४

समूचे ससार मे परिग्रह के समान प्राणियो के लिए दूसरा कोई जाल एव बधन नही है। —प्रश्नव्याकरण सूत्र, १।५

अत अधिक मिलने पर भी सग्रह न करें। परिग्रह से अपने को दूर रखें।

—आचाराग सूत्र, १।२।५

मानव-साधना

—आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा.

प्रत्येक वस्तु गतिशील है। मानव भी गति एव प्रगति करता रहता है। यह परिवर्तन जड और चेतन मे निरन्तर होता है। ये परिवर्तन २ प्रकार के होते हैं—प्रथम पदार्थ मे होने वाला परिवर्तन वस्तु के गुण धर्म को बढाता है और द्वितीय उसे समाप्त करता है। सोना रसायनज्ञ के हाथ मे पहुच कर अपना मैल छोडता है तथा शुद्धीकरण से वजन मे तो वह अवश्य कम होता है परन्तु उसका मूल्य बढ जाता है और चमक बढ जाती है। वही स्वर्ण पिण्ड जब सुनार के हाथ मे पहुच कर आभूषण बन जाता है तब और परिवर्तन होता है एव उसका मूल्य उत्तरोत्तर बढ जाता है। इसी प्रकार इस मानव आत्मा मे भी परिवर्तन होते हैं।

जिस प्रकार खदानी स्वर्ण शुद्धि पाकर मूल्यवान होता है उसी प्रकार भूले भटके मानव कर्म के क्षयोपशम से नित्यनिकोव होकर निकलते हैं। व्यवहार राशि से जब मानव निकल कर आता है तो कर्म दल मिट्टी की भाति उसके साथ लगे हुए होते है। जब वह ज्ञानी रूपी रसायनज्ञ के पास पहुँचता है तब वह कर्म रूपी दल-दल से मुक्ति पाता है। एक छोटी सी नाव समुद्र पार नही कर सकती, उसी प्रकार छोटा सा व्यक्ति मात्र मोह माया व अहकार छोडने की सोचता है, परन्तु यह उसका सोचना समुद्र पार के बाद की बात है। जब वह गृहस्थ रूप मे आता है तब वह अनुभव करता है तथा समुद्र पार नही कर सकता और मझधार मे उसे विश्राम करना पडता है। एक व्यक्ति सकल्प कुछ और करता है तथा कार्य प्रमाद का करता है। जो कार्य किया जाय उसके विपरीत निमित्त न मिलने पर ही सकल्प पूरा हो सकता है। सामूहिक जीवन मे निमित्त अवश्य मिलते हैं। निमित्त मिलने पर ज्ञान को मद्देनजर रखना चाहिये। एक व्यक्ति को शास्त्री के सग रहने का निमित्त मिला परन्तु वह उससे कुछ सीख न सका। शास्त्र मे बताया है कि भगवान् महावीर के सग गौतम व गोसाला आदि अनेको शिष्य रहे। परन्तु गौतम के अलावा किसी ने भी वीतराग से गुण नही सीखे। सबको श्रेष्ठतम निमित्त मिला, परन्तु पुरुषार्थहीनता के कारण सभी वीतरागी नही बन सके। राजकीय एव विश्वविद्यालयो के पुस्तकालय के अधिकारी महान् विद्वत्ता प्राप्त नही कर सकते। इसके विपरीत अन्य व्यक्ति पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त कर धुरंधर विद्वान् बन जाते हैं। कारण स्पष्ट है कि पुस्तकालय का सग्रह तो जड सग्रह है।

जव पुरुषार्थहीन मानव चेतनाशील विद्वानो के पास मे रह कर भी मूर्ख रह जाता है तव जड सग्रह उसके सामने हैं ही क्या ? सफलता प्राप्ति के लिए कार्य व समयानुकूल निमित्त के अतिरिक्त पुरुषार्थी होना भी आवश्यक है।

साधक को कभी-कभी प्रतिकूल निमित्त मिल जाते हैं। नशा न करने की प्रतिज्ञा होने के वावजूद नशेवाजो का सग मिलने पर प्रतिज्ञा पर अटल नही रहा जा सकता। ऐसे अवसरो पर मनोवल व पुरुषार्थ की आवश्यकता है। मानव की परीक्षा प्रतिकूल निमित्तो के वातावरण मे ही होती है। अनुकूल वातावरण मे स्थिर रहने पर कोई आश्चर्यजनक वात नही, परन्तु प्रतिकूल वातावरण में अटल रहने पर 'मानव विशेष' कहलायेगा।

मानव जीवन रूपी समुद्र मे चलता है तथा आँधी रूपी मुसीवतो के वीच मे ही रह जाता है, इसका मतलव यह नही कि उसे चलना ही नही चाहिये। एक विद्यार्थी डाक्टरेट Ph D करने की सोचता है, परन्तु उसे वी० ए० पास करके ही अध्ययन छोड देना पडता है। हालाकि वह विद्यार्थी सकल्प पूर्ण नही कर सका परन्तु जितना कर लिया, वह गलत नही है।

दूसरी तरफ जितना कर लिया उससे सतोप न करके आगे वढना चाहिये। दो पशुओ की लडाई मे पीछे हटने वाला पशु यह चाहता है कि वह वापिस जीत जाय हालाकि वह अपने सकल्प से पीछे हट गया है। हमारे भीतर कुछ पशु वृत्तिया हैं, जो क्रोध, ईर्ष्या, माया आदि की तरफ वढ़ती है, हमारा सकल्प यह है कि हम अपने मे से पशु-वृत्तिया निकालें। मानव साहित्याध्ययन करके अहिंसा के वारे मे सोचता है परन्तु घर के वातावरण से इस वात को भूल जाता है इसी का नाम पशुवृत्ति है।

एक साल लक्ष्मी जी का पूजन करने पर लक्ष्मी नही आई तो भी दूसरे साल लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। क्या यह चचल मानव आत्म-साधन के मार्ग मे ऐसा करता है ? वाह्य लक्ष्मी के वजाय आत्म-लक्ष्मी को प्रसन्न करने मे सभी लक्ष्मिया राजी हो जायेंगी। वैदिक परम्परा के अनुसार चौदह रत्नो मे से लक्ष्मी भी एक रत्न है जो भगवान विष्णु को मिली। इस लिए विष्णु लक्ष्मी पति कहलाते हैं। सभी व्यक्ति लक्ष्मी की चाहना करते हैं तथा विष्णु की भाति लक्ष्मी-पति वनना चाहते हैं। प्रश्न हमारे सामने यह है कि लक्ष्मी दास वनने से आती है या स्वामी ? लक्ष्मी स्वामी के चरणो मे लौटती है तथा दास से सेवा करवाती है। जो लक्ष्मी को ठोकर मारता है उसी को लक्ष्मी मिलती है। अग्रेजी मे कहावत है कि 'Nearer the Church, farther the God

जो व्यक्ति साधना के मार्ग मे निरुत्साह चलता है जिसमे आत्मविश्वास की कमी होती है, वह सदैव असफल रहता है। सत्य व सदाचार यदि ढीले पड गये तो लक्ष्मी नही मिल सकती। यदि ईमान को बेच कर चन्द चाँदी के चमकते हुये टुकड़े मिल भी गये तो क्या, वे भी खर्च हो जावेंगे। सकल्प मे दृढ निश्चयी तथा उत्साही की गोद मे लक्ष्मी स्वय विराजमान होती है। कवि के शब्दो मे—

प्रभुताई को सब मरे, प्रभु को मरे न कोय।
जो कोई प्रभु को मरे, तो प्रभुताई चेरी होय॥

यदि अजर, अमर, अविनाशी आत्मा रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया तो बाह्य लक्ष्मी उसके सामने तुच्छ है। आत्मारूपी लक्ष्मी को पाने के लिए पशुवृत्ति का निवारण आवश्यक है।

जो साधक एक साध्य को लेकर चलता है वह सफल होता है। आजकल के नवयुवको के साध्य अनिश्चित व अनेकानेक होते हैं। व्यवहार मे अर्थ साध्य होता है फिर भी धर्म स्थान पर धुरधर धर्मात्मा बनते हैं। धनवान लोग तो धन के नशे मे धर्म नही कर पाते तथा दरिद्र ये दलील देते हैं कि महाराज धन सम्पन्न बना दो तो आपका पाया भी नही छोड़ू। किसी का यह कहना भी ठीक है कि—

'भूखो कहे भटकू घणो, नीठ राखू शरम।
धाप्यो कहे मारे काम घणो, अब कौन करेगा धरम॥

यदि जिन-शासन की रक्षा करनी है, समाज व मानव का कल्याण करना है तो हमे 'धर्म-साधना, करनी होगी। सही अर्थ मे धर्म साधना ही 'मानव साधना' है।'



हे वीर !
तू संसार का अभिमान बन गया ।

— भगवत —

हे वीर ! तू संसार का अभिमान बन गया,
जिसने लिया उपदेश, वो इन्सान बन गया ।।

वहती थी नदी खून की मजहब के नाम पर,
उस वक्त तू दुनिया पर मिहरबान बन गया ।।

दुनिया को रिहा कर दिया हिंसा के पाप से,
सुख चैन का पथ लोगो को आसान बन गया ।।

बजने लगी सत्य और अहिसा की दुन्दुभी,
सुन कर जिसे सारा जहा बलवान बन गया ।।

हर दिल मे पनपने लगे जब प्रेम के पौधे,
तो उजड़ा हुआ चमन फिर गुलिस्तान बन गया ।

उपदेश तेरा आज भी दुनिया मे समाया,
'भगवत' तू ज्ञानवानो का है प्रान बन गया ।।

००००

जीवन दृष्टि

उपाध्याय अमरमुनि

"जीवन को अभ्युदय और निःश्रेयस की ओर गतिमान करने के लिए स्वच्छ एवं निर्मल जीवन-दृष्टि चाहिए।"

दृश्य या अदृश्य इस विराट् विश्व मे प्रत्येक प्राणी जहा भी है, वह ज्ञानमय है, कर्ममय है। वह न ज्ञान से शून्य हो सकता है और न कर्म (क्रिया) से। चाहे वह स्थूल है या सूक्ष्म है, चीटी या कुजर है—ज्ञान की ज्योति सदा उसमे जलती रही है, कर्म की शक्ति सदा उसमे गतिशील रही है। यह कभी हो नही सकता कि जो चैतन्य है उसमे ज्ञान की ज्योति न हो, कर्म की शक्ति न हो। हा, यह है कि वह ज्योति और शक्ति कभी मन्द पडती है, तो इतनी मन्द पड़ती है कि हम उसे ठीक तरह जान भी नही सकते। कितनी भी मन्द या मन्दतर हो, पर वह कभी अस्तित्व-हीन नहीं हो सकती। यदि वह अस्तित्वहीन हो जाए तो फिर वह चेतन कैसा ? जड न हो जाए। और चैतन्य कभी जड हुआ नही, होगा भी नही, इसलिए यह सत्य सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि चेतन कभी ज्ञान से शून्य नही हो सकता। जो बात ज्ञान के सम्बन्ध मे है, वही कर्म के सम्बन्ध मे भी है। ससार दशा मे कोई क्षण ऐसा नही होता, जब कि मन, वचन या कार्य की प्रवृत्ति न होती हो। कभी यह प्रवृत्ति स्थूल होती है तो कभी सूक्ष्म। कभी बाहर गतिशीलता रहती है तो कभी वह अन्दर ही सीमित रहती है। यही कारण है कि प्रतिक्षण कर्मबन्धन की प्रक्रिया अनादिकाल से चल रही है। आध्यात्मिक शुद्ध दशा मे भी ज्ञानादि गुणो के परिणमन मे वह वीर्यशक्ति गतिमान रहती है।

बात यह है कि चैतन्य ज्ञान और कर्म से कभी शून्य नही होता, उसकी प्रवृत्ति प्रतिक्षण चलती ही रहती है। जब वह प्रवृत्ति ससार की ओर अभिमुख होती है, व्यक्तिगत वासना और भोग की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होती है, तो वह बहिर्मुखी होती है। आपको किसी पर क्रोध आया और आपने कसकर दो चार गाली सुना दी, एक दो चाटे लगा दिए, यह अशुभ प्रवृत्ति है, बुरा कर्म है। और यदि आपने किसी दीन दु:खी के आसू पोछकर उसे आश्वस्त किया है, प्रेम के दो शब्दो की ठडी फुहार से उसके सतप्त हृदय को शान्त किया है, तो वह शुभ प्रवृत्ति है, श्रेष्ठ कर्म है। किसी

भूले भटके राही को उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते है, उसके हृदय का अन्धकार मिटाकर ज्योतिर्मय बना देते है, तो यह जीवन का श्रेष्ठ कर्म है। इसे शुभ एव पवित्र कर्म कहते हैं। यह महापुरुषो के जीवन मे प्रकट होता है, या इसे यो भी कह सकते हैं कि यह साधारण पुरुष को महापुरुष बनाता है। जब कर्म वैयक्तिक क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति के लिए होता है, तो वह पुरुष को अधम पुरुष बना देता है और जब कर्म विश्वहित की ऊचाई पर चढता है, तो वह पुरुष को उत्तम पुरुष के रूप मे प्रतिष्ठित कर देता है। ज्ञान की भी यही बात है। जब वह बहिर्मुख होता है— आत्मा से शरीर मे ही अटक जाता है। शारीरिक एव ऐन्द्रिक सुखो के भवर मे ही भटक जाता है, तो वह व्यक्ति को गिरा देता है, उसकी महत्ता को धूमिल कर देता है। और जब वह ज्ञान आत्मा के केन्द्र पर पहुँच जाता है, लोक-हित और विश्व कल्याण की धुरी पर घूमने लगता है, तो वह क्षुद्र व्यक्तित्व को भी विराट् रूप प्रदान कर देता है। राम और रावण ने सेना को युद्ध के मैदान मे झोक दिया, दोनो टकराए, घमासान युद्ध किया, प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर दिया। परन्तु यहा प्रश्न है कि एक का युद्ध नीति और दूसरे का अनीति क्यो कहलाया? एक को 'राम' कहा गया तो दूसरे को 'रावण'। यह क्यो हुआ? कारण यह है कि सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से राम के लिए सीता 'स्व' थी, और रावण के लिए 'पर' थी। राम ने 'स्व' को स्व बनाए रखने के लिए युद्ध किया जब कि रावण ने 'पर' को स्व बनाने के लिए।

मेरी बात आपके ध्यान मे आ गई होगी? हमारा ज्ञान तथा कर्म जब 'स्व' के केन्द्र मे रहता है, आत्मा के केन्द्र मे रहता है तो वह 'स्व' मे रखने के लिए होता है। वह मुक्ति के लिए है और जब वह 'पर' को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है तो वह बन्धन के लिए है।

आप कहेगे यह 'स्व' और 'पर' का क्या चक्कर है? हम तो कर्म करें ही नहीं, बस शून्य होकर बैठ जाए? हाथ पर हाथ धर कर स्थिर हो जाएं। मैं पूछता हूँ, तो क्या इस तरह कर्मशून्यता की स्थिति आ जाएगी? नही। ससारी प्राणी कर्म का त्याग कर ही नही सकता। वह कभी 'अकर्मण्य' बन ही नही सकता। जब तक यह ससार है 'कर्म' का चक्र चालू रहेगा। गृहस्थ जीवन का त्याग करके साधु बन गए तो क्या हुआ? वहा पुत्रिया थी, तो यहा शिष्य-शिष्याओ का झुड खडा हो गया। मा-बाप को छोडा तो यहा गुरु मिल गए। अन्तर क्या हुआ? कर्म तो नही छूटा, हा कर्म का क्षेत्र बदल गया, कर्म का स्वरूप बदल गया। कर्म नष्ट नही हुआ, किन्तु कर्म का क्षेत्र विस्तृत हो गया। पहले जो व्यक्ति सिर्फ अपनी एषणाओ की पूर्ति के लिए हाथ पाव मारता था, व्यक्तिगत स्वार्थ, अहकार और वासनाओ के पीछे चक्कर

काटता था, वह अब लोक-हित के लिए प्रयत्नशील हो गया। विश्व के अभ्युदय और कल्याण के लिए उसका पुरुषार्थ जागृत हो गया। इसका अर्थ हुआ कि कर्म का स्वरूप वदल गया, उसके पीछे जो प्रेरक दृष्टि थी वह वदल गई, जो कर्म 'पर' भाव की ओर दौड़ता था वह 'स्व' भाव की ओर वढ गया। जब दृष्टि वदल गई, तो उसका दोष दूर हो गया। कर्म का मैल धुल कर उसका रूप निखर गया।

कर्म मे जब हमारा स्वार्थ और वैयक्तिक भोग रहता है, तो वह कर्म मैला रहता है, अशुद्ध रहता है। कल्पना कीजिये कि आप भोजन कर रहे है, अच्छे-अच्छे पदार्थ आपके थाल मे सजाकर रखे गये हैं, और आप वडे चाव से स्वाद लेकर खा रहे हैं। वडा रस मिल रहा है, आनन्द आ रहा है। घर मे कोई वूढा है, बीमार है, या कोई वच्चा है, अथवा द्वार पर कोई भूखा अतिथि खडा है। वे सव देख रहे हैं, तरस रहे हैं, पर आप किसी की परवाह नही कर रहे हैं। वच्चा मागता है तो आप डाट देते हैं, और स्वय एक के वाद एक अच्छे-अच्छे पदार्थ पेट देवता को अर्पित करते जा रहे हैं। यह भोजन क्या है ? अमृत है या विष ? अमृत कहाँ, विष ही है। और विचार कीजिए—यदि आप अपने द्वार पर आए अतिथि को देखते हैं कि वडा गरीव है, दुखी है, भूखा और असहाय है। रोटी का एक कौर भी उसके जीवन दीपक मे तेल का काम कर सकता है। और आपने अपने थाल मे से कुछ भोजन उठाकर उसको अर्पित कर दिया तो उसके जीवन की गिरती दीवार को सहारा दे दिया। घर मे वूढे हैं, रोगी हैं, बच्चे हैं, सवको पहले तृप्त करके, फिर स्वय अवशिष्ट भोजन खाने वैठते हैं, आपके पास भोजन भले ही कम रह गया है, पर आप उन सवकी तृप्ति से वडे सन्तुष्ट हो रहे हैं। यह जो भोजन है, वह क्या है ? अमृत है। वह अन्न नही, सुधा है। पहली स्थिति मे भोजन के साथ आसक्ति का विष था, लूट खसोट का जहर था। और दूसरी स्थिति में समर्पण का अमृत भरा है। कर्म सिर्फ अपने ही लिए है वह मलिन है, जहर है, पाप है। गीता मे श्री कृष्ण ने कहा है—

> अघ स केवल भुङ्क्ते,
> य' पचत्यात्मकारणात्।

जो सिर्फ अपने भोग की दृष्टि रखता है, वह पाप का भोग करता है। पाप का भोग इसलिए कहा है कि उसमे स्वार्थ का दोप भरा है, रागद्वेप का मैलापन भरा है। उसी कर्म को यदि निष्काम भाव से करो, परहित के लिए करो तो उसमे उज्ज्वल ज्योति निखर आती है। स्वच्छता चमक उठती है। वह कर्म शुद्ध और शुभ्र हो जाता है।

तप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(श्री रमेश मुनि शास्त्री)

जीवन की ऊर्जा :

तप, जीवन की ऊर्जा है, आध्यात्मिक उष्मा है और है जीवन को सौम्य एव सर्वांगपूर्ण बनाने की उत्कृष्ट साधना। यह एक ऐसी जलधारा है जो विषयवासना के मल को धोकर मन को साफ करती है। यह एक प्रकार का अन्तरग स्नान है। इसमे जीवन निर्विकार और पवित्र बनता है।

तप की परिभाषा

जिस साधना के माध्यम से शरीर के रक्त, मास, हड्डिया, मज्जा आदि तप जाते हैं तथा जिसके द्वारा अशुभ कर्म जल जाते हैं। जिस साधना-आराधना से पाप-कर्म तप्त हो जाते हैं—उसे तप कहते हैं। कर्मों को सूखे घास की उपमा से उपमित करने के कारण उसको जलाने के लिये तप को अग्नि कहा गया है।

जो आठ प्रकार के कर्मों को तप्त करता-हो, अर्थात् उन्हे भस्मसात् कर डालने मे समर्थ हो, उसे तप कहा जाता है। इच्छाओ का निरोध करना तप है।

इस परिभाषा का बीज उत्तराध्ययन सूत्र मे उपलब्ध होता है। प्रत्याख्यान-अर्थात् त्याग-वृत्ति अपनाने से इच्छा–आशा और 'पच्चक्खाणेण इच्छानिरोह जणयइ' तृष्णा प्रशात हो जाती है। इस दृष्टि से यह अर्थ हुआ—जब तक इच्छाओ का निरोध नही, इच्छाओ का नियमन सयमन नही, तब तक पाप की आराधना कैसे सभव है ?

इस प्रकार तप की अनेक परिभाषाये बतायी गई हैं। तप के समग्र रूप को किसी एक परिभाषा मे आबद्ध करना अत्यधिक कठिन है। तप का प्रताप व प्रभाव असीम है, अत. असीम को ससीम शब्दो के माध्यम से व्यक्त करना कथमपि सभव नही है। तप का मुख्य ध्येय है—जीवन के अन्तरतम का शोधन करना। यह तथ्य आगम साहित्य मे स्थान-स्थान पर प्रतिध्वनित हुआ है।

तप की महिमा

जैनागमो व ग्रन्थो मे तप के माहात्म्य का अनूठा वर्णन है। प्राचीन समय मे जैन श्रमण परम्परा के मुनि "जैन मुनि" नही कहला कर निर्ग्रन्थ तपस्वी, घोर तपस्वी, सयमी, सयति आदि विशेषणो से संबोधित किये जाते रहे हैं। जैन श्रमण तप आराधना करने मे शूर होते हैं। आगम साहित्य मे जहा जैन श्रमण के लिये ज्ञान-दर्शन चारित्र धारी विशेषण प्रयुक्त हुए है वहा उन्हे तपसम्पन्न भी कहा गया है। सभी तीर्थंकर तप के साथ ही सयम के महापथ पर भी अग्रसर होते हैं।

तप शुद्धि और सिद्धि का मार्ग

तप आत्म-सशोधन की एक सुन्दर एव सम्पूर्ण प्रक्रिया है। यह केवल शुद्धि ही नही, सिद्धि का भी मार्ग है। सयमी साधक व्रत आदि के द्वारा आश्रवो को रोक देता है—और पुरातन करोडो जन्म जन्मान्तर के सचित किये हुये कर्मों को तप के द्वारा सर्वथा क्षीण-कर देता है।

तप के भेद-प्रभेद ·

तप के अनेक प्रकार हैं और उनकी प्रक्रियाए भी अलग-अलग है। आगम साहित्य मे उसके मूलत दो भेद किये गये हैं—वाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप का अर्थ है—वाहर दिखाई देने वाला तप। इस तप की साधना मे शारीरिक क्रिया की प्रधानता होती है, अर्थात् वह साधना शरीर से अधिक सम्वन्ध रखती है। उपवासादि इस श्रेणी मे आते हैं। दीर्घकालीन उपवास से शरीर दुर्बल वन जाता है। आभ्यन्तर तप का अर्थ है—अन्तर मे चलने वाली एक विशुद्धतम प्रक्रिया। इसमे मानसिक क्रिया की मुख्यता होती है। अन्तर वृत्तियो का शुद्धिकरण होता है। आभ्यन्तर तप की विधि है—मन को सम्पूर्णतया मांजना, शुभ चिन्तन से उसे सरल वनाना, एकाग्र करना।

वाह्य तप के ६ भेद

वाह्य तप को छह भेदो मे वांटा गया है और उसके अन्तर्गत अनेक भेद-प्रभेद भी हैं। अन्तर्भेदो का निरूपण-प्ररूपण करने से ज्ञात होगा कि वाह्य तप की परिधि पर्याप्त विस्तृत है। वाह्य तप के छह भेद इस प्रकार हैं :—

(१) अनशन—आहार का त्याग।

(२) ऊनोदरी—आहार आदि की मात्रा को कम करना।

(३) भिक्षाचरी—अभिग्रह आदि के साथ निर्दोष आहार ग्रहण करना।

(४) रस परित्याग—स्निग्ध आदि आहार का परित्याग।

(५) कायक्लेश—देह को भिन्न-भिन्न आसनो के माध्यम से कष्टसहिष्णु बनाना।

(६) प्रतिसलीनता—शरीर, इन्द्रिय, मन, वचन, काया आदि को ईश्वरोन्मुख करना।

इनमें से प्रत्येक का स्वरूप–विवेचन इस प्रकार है—

(१) अनशन —अनशन का शाब्दिक अर्थ है—निराहार। अशन का अर्थ है—भोजन। भोजन का त्याग–परित्याग करना—अनशन कहलाता है। आहार के अभाव मे कोई भी जीवित नही रह सकता। जैन-दर्शन का यह मन्तव्य है कि कोई भी प्राणी अनाहारक स्थिति मे दो समय से अधिक नही रह सकता है। साराश यह है कि प्रत्येक शरीरधारी प्राणी को आहार की नितान्त अपेक्षा रहती है। जब तक शरीर है तब तक भूख है। जब-जब पेट मे भूख की आग सुलगने लगती है तब-तब उसकी परिशान्ति आहार से ही होती है।

गोतम की जिज्ञासा :

इन्द्रभूति गोतम गणधर ने भगवान् महावीर के सान्निध्य मे अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुये पूछा—भगवन्! आहार का त्याग करने से किस फल की प्राप्ति होती है? उत्तर मे प्रभु ने फरमाया—हे गोतम! आहार को छोडने मे जीवन की आशसा अर्थात् शरीर और प्राणो का मोह छूट जाता है। प्रस्तुत कथन के प्रकाश मे हमे यह ज्ञात होता है कि जब तक देह के प्रति आसक्ति है, तब तक तप की सम्यक् प्रकार से आराधना नही हो सकती।

तप और कर्म–निर्जरा

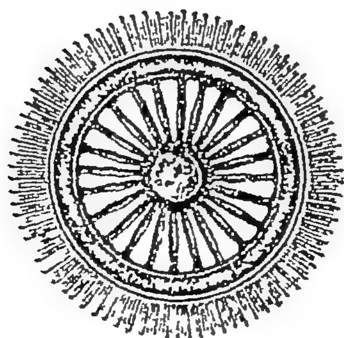
'भगवती सूत्र' में एक प्रसग पर पूछा गया है—साधु एक उपवास करता है तो उसके कितने कर्मों का क्षय हो जाता है। उत्तर मे कहा गया है—साधु एक उपवास मे जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नारकीय जीव हजारो वर्षों मे भी नही खपा सकता। एक वेले की तपस्या मे सयमी जितने कर्मो का क्षय कर डालता है, नैरयिक जीव लाखो वर्ष मे भी उतनी कर्म-निर्जरा नही कर सकता। साधु तेले मे जितने कर्मों को खपा देता है, नैरयिक जीव करोड़ो वर्षो मे भी उतने कर्मों का नाश नही कर सकता और साधु एक चोला करके जितने कर्म क्षय कर सकता है, नैरयिक जीव करोडो करोड वर्षों मे भी उतने कर्मो को नही खपा सकता।

इस प्रसग से पता चलता है, कि उपवास की महत्ता कितनी उच्चकोटि की है, उसकी गौरवगाथा का चित्र कितना मनमोहक है।

अनशन के अन्तर्भेद

अनशन का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है–इत्वरिक और यावत्कथित। इत्वरिक अनशन के अनेक भेद किये गये हैं। यावत्कथिक अनशन तप को मरणकालीन अर्थात् मृत्युपर्यन्त भी कहा गया है इत्वरिक तप की आराधना मे समय की सीमा निर्धारित रहती है। निश्चित समय की मर्यादा पूर्ण होने पर आहार की आकाक्षा रहती है, एतदर्थ इस तप को साकाक्ष तप भी कहा है। यावत्कथित तप मे जीवन पर्यन्त आहार का परित्याग किया जाता है। उसमे भोजन करने की भावना नही रहती है, जीवन के प्रति किसी भी प्रकार की आकाक्षा नही रहती है।

इत्वरिक तप उत्कृष्ट छह मास का माना गया है। यहा यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि क्या छह मास से अधिक तप करने पर उसे इत्वरिक तप नही कहेगे ? प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव ने स्वय एक वर्ष तक कठोर तपस्साधना की थी। उनके शासन-काल मे एक वर्ष दीर्घ तप माना गया है। मध्य के बाईस तीर्थङ्करो के शासन मे अष्ट मास का तप माना गया है तो क्या उनका तप इत्वरिक तप नही कहलायेगा ? इस शका के समाधान मे यही कहा जा सकता है कि इत्वरिक तप, जो उत्कृष्ट छह मास का बताया है, वह चरम-तीर्थङ्कर के शासन-काल की अपेक्षा से कहा गया है जो तप स्वयं श्रमण प्रभु महावीर ने किया है। इस हेतु से अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन मे इत्वरिक तप, उत्कृष्ट तप छह मास का है। एक उपवास से लेकर छह मास पर्यन्त का उपवास इत्वरिक तप के अन्तर्गत है।



तप : एक अनुचिन्तन

• श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

श्रमण-सस्कृति तप प्रधान सस्कृति है। तप श्रमण संस्कृति का प्राण-तत्व है। जीवन की कला है। आत्मा की अन्त स्फूर्त पवित्रता है, जीवन का आलोक है। तप की महिमा और गरिमा का जो गौरवगान श्रमण-सस्कृति ने गाया है, वह अनूठा है, अपूर्व है।

श्रमण-सस्कृति का आधार श्रमण है। जैनागमो मे अनेक स्थलो पर 'समण' शब्द व्यवहृत हुआ है, जिसका अर्थ साधु है। 'श्रमण' शब्द के तीन रूप होते हैं—'श्रमण', 'समन' और 'शमन'। श्रमण शब्द श्रम धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—श्रम करना।

दशवैकालिक वृत्ति मे आचार्य हरिभद्र ने तप का अपर नाम श्रम भी दिया है। श्रमण का अर्थ तपस्या से खिन्न, क्षीणकाय तपस्वी किया है। जो व्यक्ति अपने ही श्रम से उत्कर्ष की प्राप्ति करता है वह श्रमण है।

श्रमण-सस्कृति ने तप को धर्म माना है। स्थानाङ्ग समवायाङ मे दश विध धर्म का जो उल्लेख है उसमे तप भी एक है। मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले साधक के लिये तप की साधना अनिवार्य है।

आगम साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि श्रमण-सस्कृति का श्रमण श्रमणत्व को स्वीकार कर तपः कर्म का आचरण करता है। सभी तीर्थंकर तप के साथ ही प्रव्रज्या लेते हैं क्योकि तप मगल ही नही, उत्कृष्ट मगल है। भगवान् श्री ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे तप की साधना की। भगवान् श्री महावीर ने भी बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक उग्र तप तपा। इस लम्बी अवधि मे उन्होने केवल तीन सौ दिन आहार ग्रहण किया। शेष दिन वे निर्जल और निराहार रहे। आचाराग, आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, महावीर चरिय, प्रभृति, ग्रन्थो मे भगवान् श्री महावीर के उग्र तप का जो रोमाचकारी वर्णन किया गया है, उसे पढकर पाठक विस्मित हो जाता है। आचार्य भद्रबाहु के शब्दो मे अन्य तीर्थङ्करों की अपेक्षा महावीर का तपः कर्म अत्युग्र था।

भगवान् महावीर के जीवन का तलस्पर्शी अध्ययन करने पर नि सकोच कहा जा मकता है कि वे तपोविज्ञान के अद्वितीय आचार्य थे। उन्होंने अपने समय मे प्रचलित देहदमनरूप बहिर्मु ख तप का आन्तरिक साधना के साथ सामजस्य स्थापित किया और उसे आन्तरिक एव व्यापक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार वे तपः साधना के महान् सस्कर्ता और साथ ही पुरस्कर्ता भी हुए। उनकी अनेक बहुमूल्य देनो मे तप विषयक देन भी कम महत्त्व की नही है।

जैनागमो की तरह बौद्ध वाङ्मय मे भी अनेक स्थलो पर महावीर के शिष्यो के लिये 'निगठ' के साथ 'तपस्सी' 'दिग्घ तपस्सी' विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् महावीर स्वय कितने उग्र तपस्वी रहे होंगे। अनुत्तरौपपातिक, अन्तकृत् दशा, भगवती आदि आगमो मे महावीर के शिष्यो और शिष्याओ का वर्णन है। उन्होने रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली लघुसिहनिष्क्रीडित, भिक्षुप्रतिमा, लघु सर्वतो-भद्र, महासर्वतोभद्र, भद्रोत्तर प्रतिमा, आयविल वर्धमान, गुणरत्न सवत्सर, चन्द्र प्रतिमा, सलेखना आदि महान् तप करके देह को जर्जरित बनाया था। 'तवसूरा अणगारा' अनगार तप मे शूर होते हैं, यह जैन परम्परा का प्रसिद्ध वाक्य है। जैन श्रमण के लिए जहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्पन्न विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ उसे तपसम्पन्न भी कहा गया है।

तप जीवनोत्थान का प्रशस्त पथ है। तप की उत्कृष्ट आराधना-साधना से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है। सभी तीर्थंकरो ने अपने पूर्वभवो मे तप की साधना की। श्रमण-भगवान् श्री महावीर के जीव ने 'नन्दन' के भव मे एक लक्ष वर्ष तक निरन्तर मास खमण की तपस्या की। उन मास खमणो की सख्या ग्यारह लाख साठ हजार थी।

वैदिक सस्कृति ने भी साधक के लिए तप की साधना आवश्यक माना है। योग दर्शन ने तप को क्रिया-योग मे स्थान दिया है। उपनिषद्, गीता और मनुस्मृति मे भी तप और स्वाध्याय पर बल दिया गया है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक सस्कृति की तप साधना मे और जैन सस्कृति की तप साधना मे महान् अन्तर है।

जैन-दर्शन मे तप के दो प्रकार बताये हैं। बाह्य तप मे शरीर सम्बन्धी सभी साधन नियम समा जाते हैं और आभ्यन्तर तप मे हृदय को विशुद्ध बनाने वाले आचारो का समावेश हो जाता है। अनशन और ध्यान दोनो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत क्रम मे किया गया है। इस क्रम मे न तो केवल कष्ट सहन का विधान है और न कष्ट से पलायन कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न ही है। साधक के लिये, सहिष्णुता और एकाग्रता दोनो अपेक्षित हैं। दोनो का सुमेल इस साधना क्रम मे है।

पर अन्य परम्पराओ में ऐसा सुनियोजित क्रम नहीं है। अन्य परम्पराओ ने जहाँ केवल काय क्लेश और देह-दमन को महत्त्व दिया है वहा जैन परम्परा ने काय-क्लेश और देह-दमन के साथ ही आभ्यन्तर तप को भी महत्त्व दिया है। जैन संस्कृति का यह वज्र आघोप रहा है कि वाह्य तप के साथ यदि आभ्यन्तर तप का मेल नहीं है तो वह वाह्य तप मिथ्या है। धन्य अनगार की तरह ही तामली तापस और पूरण तापस ने उग्र तप किया था, किन्तु आभ्यन्तर तप के अभाव मे उनके विपुल तप को भगवान् महावीर ने अज्ञान तप कहा है। करोडो वर्षों तक अज्ञान तप करने पर अज्ञानी जितने कर्मो को नष्ट कर पाता है। उतने कर्मों को ज्ञानी कुछ ही समय मे नष्ट कर देता है। एतदर्थ ही साधक के लिये वाह्य तप करने के पूर्व आगमो का अध्ययन करना आवश्यक माना गया है। वाह्य तप क्रिया योग का प्रतीक है और आभ्यन्तर तप ज्ञानयोग का। ज्ञान और क्रिया ही मोक्ष के मार्ग हैं।

जैन सस्कृति ने तप का मुख्य उद्देश्य आत्माभ्युदय स्वीकार किया है। आचार्य जिनदास गणी महत्तर के शब्दो मे, "तप वह है जो अष्ट प्रकार की कर्म ग्रन्थियो को तपाता है। उन्हे भस्म करता है। भगवान् महावीर ने तप का फल व्युदान बताया है। व्युदान का अर्थ है संचित कर्ममल को साफ कर देना।"

एक आचार्य ने तप का अर्थ 'इच्छाओ को रोकना' किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है जैसे सदोष स्वर्ण प्रदीप्त अग्नि द्वारा शुद्ध होता है वैसे ही तप से आत्मा विशुद्ध होता है। वाह्य और आभ्यन्तर तपस्याग्नि के प्रज्वलित होने पर यमी दुर्जर कर्मों को तत्क्षण भस्म कर देता है। उत्तराध्ययन मे बताया है कि कोटि भवो के सचित कर्म तप द्वारा जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं। आचार्य श्री शय्यभव ने बताया कि (१) इहलोक सम्बन्धी लाभ के निमित्त तप नहीं करना चाहिए। (२) परलोक सम्बन्धी अभ्युदय के निमित्त तप नही करना चाहिए। (३) कीर्ति, वर्ण (लोक-व्यापी यश) शब्द (लोक प्रसिद्धि) और श्लोक (स्थानीय प्रशंसा) के लिए तप नही करना चाहिए। निर्जरा के अतिरिक्त किसी भी उद्देश्य से तप नही करना चाहिए।

आचार्य अकलक देव कहते हैं—जैसे किसान को खेती से अभीष्ट धान्य के साथ-माथ-पयाल भी मिलता है उसी तरह तप-क्रिया का प्रधान प्रयोजन कर्मक्षय ही है। अभ्युदय की प्राप्ति तो पयाल की तरह आनुषगिक है।

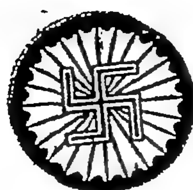
तप स्वरूपत. एक है, किन्तु तपस्वी की भावना के भेद के कारण उसे सकाम और निष्काम, इन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। लोकेषणा और लौकिक ऋद्धि-सिद्धि के उद्देश्य से किए जाने वाला तप सकाम तप कहलाता है और आत्म-उत्थान के लिए या कर्म निर्जरा के लिए जो तप किया जाता है वह निष्काम तप है।

गाधीजी ने कहा है—"तप से जीवन निखरता है, मन मँजता है और काया कचनमय होती है।" काया के कचनमय हो जाने का आशय यही है कि तप से शुष्क शरीर मे एक अनूठा तपस्तेज दमक उठता है। तप एक प्रकार से शुद्ध किया हुआ रसायन है। कहा जाता है कि आज के वैज्ञानिको ने 'वायोकेमिस्ट' औषधियो की शोध की है। उनका मन्तव्य है कि शरीर मे वारह प्रकार के तत्त्व होते हैं। उन तत्त्वो मे से किसी एक तत्त्व की न्यूनता होने से शरीर रुग्ण होता है। वारह प्रकार के क्षार तत्त्वो से रोगो को नष्ट कर शरीर को पूर्ण स्वस्थ और मस्त वनाया जा सकता है। तप के जो वारह प्रकार हैं वे 'वायो केमिस्ट' औषधियो के समान हैं। इन तपो का शरीर के किस तत्त्व पर कैसा प्रभाव पडता है यह अनुसधान का विपय है, तथापि यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इनके आचरण से कर्म रूपी रोग नष्ट होते हैं और आत्मा पूर्ण स्वस्थ होती है।

तप श्रमण-सस्कृति की आत्मा है, तप और श्रमण सस्कृति के द्वैत की मान्यता को मैं मानस की सिकुडन मानता हू। तप सयम की पौध का फलना-फूलना ही श्रमण-सस्कृति का विकास है।

धर्मानुरागिणी दीर्घतपस्विनी सुश्राविका इचरज कुंवरजी लूणावत ने भगवान् महावीर के पश्चात् सुदीर्घ तपस्या का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इतना दीर्घ तप करना वस्तुत अनूठा है, अद्‌भुत है। भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताव्दी के उपलक्ष मे इस वहिन ने वहुत ही सुन्दर व महान् श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है।

वहिन की तपस्या के उपलक्ष मे स्मारिका प्रकाशित करने का सुन्दर आयोजन कर तप का जो अनुमोदन किया जा रहा है वह स्तुत्य है।



महामानव महावीर

पाकर किसकी चमक चन्द्रमा चमक रहा है ?
किसकी लेकर दीप्ति दिवाकर दमक रहा है ?
किसका सौरभ व्याप्त सुमन-गरण मे है प्यारा ?
किसकी आभा से आलोकित है जग सारा ?

अभिशापो के बीच कौन वरदान बना था ?
कौन प्रलय मे प्राण बना था, त्राण बना था ?
कौन महामानव था जो भू-पर था आया ?
किसने मानवता का जग को मूल्य बताया ?

अवगणितो को किसने अपने गले लगाया ?
समता का संगीत-सुखद था किसने गाया ?
संयम की साकार मूर्ति किसने दिखलाई ?
तपस्तेज की महिमा थी किसने बतलाई ?

महावीर जय ! जगद्वन्द्य त्रिशला के नन्दन !
ज्ञातपुत्र ! केसरी-अंक ! जन-जन-मन-रंजन !
जय वर्द्धमान ! जिनदेव ! लोक के अनुपम त्राता !
हे सन्मार्ग-प्रदीप ! विश्व के भाग्यविधाता !



जैन संस्कृति और तप

(महासती श्री कौशल्याजी म० सा०)

संस्कृति का स्रोत ऐसे सरिता प्रवाह तुल्य है जो अपने प्रभव स्थान से अन्त तक अनेको छोटे बडे जल स्रोतो से परिवर्द्धित और परिवर्तित होकर अन्य दूसरे सम्मिश्रणों से युक्त होता रहता है तथा रूप रस, गन्ध और स्वाद मे भी परिवर्तन प्राप्त करता है । जैन सस्कृति भी इस सामान्य सिद्धान्त का अपवाद नही है । इस सस्कृति के आविर्भावक कौन थे और यह किस स्वरूप मे उद्गत हुई ? यह एक कठिन समस्या है जिसका समाधान सम्भव नही । पुरातन प्रवाह का जैसा भी स्रोत प्रस्तुत है, उसके सहारे जैन सस्कृति के स्वरूप को पहचाना जाता है ।

अन्य सस्कृतियो के समान जैन सस्कृति के भी दो रूप हैं । पहला बाह्य और दूसरा आन्तर । बाह्य रूप वह है जिसे उस सस्कृति के अतिरिक्त अन्य सामान्य जन भी अपनी इन्द्रियो से जान सकते हैं । आन्तर स्वरूप का आकलन तो एक मात्र उस ही को होता है जो उसे अपने जीवन मे आत्मसात् करता है । आन्तर सस्कृति-मय जीवनयापन करने वाले व्यक्तियो के जीवन-व्यवहारो तथा निकट के वाता-वरण पर पडने वाले प्रभावो से वे किसी भी आन्तर रूप का सस्कृति की अनुभूति कर सकते हैं । सस्कृति का क्षेत्र इतना विशाल और व्यापक होता है कि उसे देश, काल, जाति, सम्प्रदाय भाषा और भावो की सीमा मे नही बाधा जा सकता है ।

जैन सस्कृति की आत्मा उसका निवर्तक धर्म है । पुनर्जन्म के चक्र से निवृत्ति कराने वाला निवर्तक कहा जाता है । भारतीय सस्कृति के विचित्र और विविध ताने-बाने को गहराई से देखें तो आपको दृष्टिगत होगा कि भारतीय आत्मवादी दर्शनो मे कर्म-काण्डी मिमासक के अतिरिक्त सभी निवर्तक धर्मवादी हैं ।

आदि काल से जो धीरे-धीरे निवर्तक धर्म के अग प्रति अंग रूप मे आचार सहिता विकसित हुई वह निम्न प्रकार है —

(१) आत्म शुद्धि जीवन का मुख्य ध्येय है ।

(२) मोह, अविद्या, तज्जन्य तृष्णा का मूलोच्छेद उद्देश्य प्राप्ति मे अनिवार्य है ।

(३) उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शारीरिक, मासिक, वाचिक विविध तपस्याओ का तथा नाना प्रकार के ध्यान, योग का अनुसरण करना पच महाव्रतो का अनुष्ठान करना।

(४) मद्यमास आदि का यावज्जीवन निपेध।

भगवान् महावीर ऐसे ही सम्प्रदाय के नेता वने। आप से पूर्व २३वे भगवान् पार्श्वनाथ हो चुके थे। आज जैन शब्द का आशय भगवान् महावीर द्वारा पोपित सम्प्रदाय के त्यागी, गृहस्थी, श्रावक मव ही का वोध होता है इसके लिये पहले निर्ग्रंथ और समणोवासग आदि व्यवहृत होते थे।

सस्कृति का ध्येय मानव मात्र का कल्याण है। यह व्येय तभी वह पूरा कर सकता है जव वह अपने जनक और पोषक राष्ट्र की प्रगति और विकास की ओर उन्मुख हो। सस्कृति का वाह्य स्वरूप केवल उत्थान के समय ही प्रस्फुटित होता है—उस ही समय वह चित्ताकर्षक स्रोत होता है, परन्तु संस्कृति के हृदय की वात ही निराली है। सकट काल हो अथवा विकास की चरम सीमा हो, उसकी आवश्यकता तो सदा सर्वदा समान ही वनी रहती है। कोई भी सस्कृति केवल अपने प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास की रोचक गाथाओ और विरुदावली पर जीवित रहने की आशा नही कर सकती, जव तक उसका भविष्य निर्माण मे योग न हो। इसका समस्त आचार-विचार मुक्ति प्राप्ति की आकाक्षा पर अवस्थित है।

श्रमण धर्म के मूल प्रवर्तक कौन-कौन थे, वे कहा और कव हुए, इसका यथार्थ और पूरा इतिहास अज्ञात है। पर हम उपलब्ध साहित्य के आधार पर इतना कहने की स्थिति मे हैं कि नाभि पुत्र ऋषभ तथा आदि विद्वान् कपिल साम्य धर्म के प्रवल समर्थक थे। ब्राह्मण ग्रन्थो मे ऋषभ का उल्लेख उग्रतपस्वी के रूप में है सही, पर उनकी पूरी प्रतिष्ठा जैन परम्परा मे ही है जव कि कपिल का ऋपि रूप से निर्देश जैन कथा साहित्य मे विद्यमान है फिर भी उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा साख्य परम्परा मे तथा सांख्यमूलक पुराणो मे है। ऋषभ और कपिल आदि द्वारा जिस आत्मौपम्य भावना की ओर तन्मूलक अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा जमी थी उस भावना और उस धर्म की पोपक अनेक शाखा-प्रशाखायें थी, जिनमे कोई वाह्य तप पर तो कोई ध्यान पर, तो कोई चित्तशुद्धि पर अधिक भार देती थी, पर साम्य या क्षमता सवका समान लक्ष्य था।

जिस शाखा ने साम्य सिद्धि-मूलक अहिंसा को सिद्ध करने के लिए अपरिग्रह पर अधिक वल दिया और उसी ने परिग्रह वंधन के त्याग पर अधिक जोर दिया तथा कहा कि जव तक परिवार एव परिग्रह का वधन हो, पूर्ण अहिंसा या पूर्ण साम्य

सिद्ध नहीं हो सकता, श्रमण धर्म की वही शाखा निग्रंथ नाम से विख्यात हुई। इसके प्रधान प्रवर्तक नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ ही जान पडते हैं।

अहिंसा की भावना के साथ-साथ त्याग और तप की भावना अनिवार्य रूप से निग्रंथ धर्म मे ग्रथित तो हो ही गई, किन्तु साधक के मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वाह्य तप और वाह्य त्याग पर अधिक वल देने से क्या आत्म शुद्धि सम्भव है? इसी प्रश्न के उत्तर मे यह विचार भी फलित हुआ कि क्या राग द्वेष आदि मलिन वृत्तियो पर विजय पाना भी मुख्य साध्य है। इस साध्य की सिद्धि जिस अहिंसा तप या त्याग से नही, वह अहिंसा, तप और त्याग कैसा ही क्यो न हो, आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगी नही है। इस ही विचार के प्रवर्तक 'जिन' कहलाने लगे। ऐसे जिन अनेक हुये, परन्तु जिन कथित जैन धर्म कहने से मुख्यतया महावीर के धर्म का ही वोध होता है जो राग द्वेष की विजय पर ही प्रधानतया वल देता है। धर्म विकास का इतिहास कहता है कि उत्तरोत्तर उदय मे आने वाली नूतन धर्म की अवस्थाओ मे उस-उस धर्म की पुरानी अविरोधी अवस्थाओ का समावेश अवश्य रहता है। यही कारण है कि जिन धर्म निग्रंथ धर्म भी है और श्रमण धर्म भी है।

जैन श्रुत रूप से विख्यात द्वादशागो या चतुर्दश पूर्व मे सोमाइये सामायिक का स्थान शीर्षस्थ है—यही आचाराग सूत्र है। जैसे ब्राह्मण परम्परा मे सन्ध्या एक आवश्यक कर्म है वैसे ही जैन परम्परा मे गृहस्थ और त्यागी सब के लिए समान रूप से छ. आवश्यक कर्म वताये हैं।

जैन परम्परा मे साम्य दृष्टि पर अधिक वल दिया गया है। साम्य दृष्टि को ब्राह्मण परम्परा मे लव्धप्रतिष्ठ ब्रह्म कह कर साम्य दृष्टि पोषक समस्त आचार विचार को ब्रह्मचर्य, वेम्भचेराई कहा है। धम्मपद और शान्ति पर्व की तरह जैन धर्म मे भी धारण करने वाले श्रमण ब्राह्मण कहकर श्रमण और ब्राह्मण के बीच का अन्तर मिटाने की चेष्टा की गयी है, यही जैनियो का अनेकान्त महामत्र है।

हिंसा से निवृत्त होना अहिंसा है—इसी प्रश्न के समाधान के लिये जैन धर्म मे चार विद्यायें फलित हुई हैं—आत्म विद्या, कर्म विद्या, चारित्र विद्या और लोक-विद्या। इस प्रकार अहिंसा, अनेकान्त और तन्मूलक विद्यायें जैन धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा है।

गणतत्र भारत की पुरानी वरोहर है। अगर हम मे अन्याय मात्र का सामना करने का नैतिक वल विद्यमान है तथा निस्सार मतभेदो एव स्वार्थों को त्याग कर राष्ट्र, समाज और गण धर्म की रक्षा करने के लिए वलिदान करने की क्षमता आ जाय तो किस की सामर्थ्य है, जो हमे अपने पूर्वजो की सम्पदा के अधिकार और

उपभोग से वंचित कर सके ? गण धर्म मे जो असीम शक्ति निहित है, उसका अगर हम उपयोग करना सीखलें अथवा जीवन मे उसे उतारलें तो जैन धर्म विश्व मे दिवाकर की तरह चमक उठे। जैन युग मे नवलिच्छी और नवमल्ली जाति के अठारहगण राज्यो का गणतंत्र इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो पर अंकित है।

तप

श्रमण सस्कृति जैन संस्कृति का पर्याय है। यह तप प्रधान सस्कृति है। तप जैन दर्शन का प्राण तत्त्व है। प्राचीन आगमो मे तपस्वी को श्रमण कहकर परिभाषित किया है। श्रमण अर्थात् साधु, इसके तीन रूप हमे देखने को मिलते है—श्रमण, समण और शमण—श्रमण श्रम धातु से निष्पन्न है। श्रम का अर्थ परिश्रम है।

श्राम्यन्तीति श्रमणा, तपस्यन्तीत्यर्थ का आशय तपस्या, खिन्न, क्षीण है तो व्यक्ति स्वयं के श्रम से अपनी आत्मा का उत्कर्ष करता है, श्रमण कहलाता है। आचार्य शीलोक ने भी श्रमण शब्द की विवेचना निम्न प्रकार से की है—

'श्राम्यति तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमण.' अर्थात् उसका जीवन तपोमय है जो सतत श्रम और तप मे आप्लावित है—पीडा, कष्ट और दु ख सहन करते हुये कायक्लेश से अपनी आत्मा को विकासोन्मुख वनाता है वह श्रमण कहा जाता है। इस प्रकार तप जैन सस्कृति और दर्शन का प्राण तत्त्व है। तप जीवन उत्कर्ष का प्रशस्त पथ है।

जैन धर्म मे तप का वही स्थान है, जैसा देह मे हृदय का। जैन साधना का मूल अंग तप के अमृत से आप्लावित है। तप आध्यात्मिक साधना का प्राण वायु है।

जैन दर्शन मे आत्मा की उच्चता तथा नीचता का मापदण्ड स्वर्ग अथवा नर्क को नही माना है, वह शुद्धि को स्वीकारता है—जैनाचार्यो ने आत्मा की निर्मलता, पावनता और शुद्धता को जीवन का मूलाधार कहा है—जब तक आत्मा में पवित्रता नही आती वह विकार मुक्त नही होता, उसे सत्य के दर्शन नही होते—जब तक वह कर्म रूपी मल के लेप से मुक्त नहीं है तव तक उसे उपयोग नही आता—तैरना नही आता—निशिवासर डुबकिया लगाता रहता है तथा डूबने की तैयारी करता रहता है। हमारा प्रयोग जब शुभ और अशुभ में अलग होकर शुद्ध चिदानन्द की ओर उन्मुख होता है तव वह पुनीत वनता है—तप उस चिदानन्द की ओर अग्रसर करने वाला मूल तत्त्व है—ससार दिशा से वीतराग की ओर ले जाने वाली नौकाए—इस अर्थ मे तप वह साधना है जो मानव को आत्मिक भावो की ओर ले जाने वाली गति है, प्रकृति है और प्रवृत्ति है।

श्रमण सस्कृति में तप साधना अन्य सस्कृतियो मे सर्वथा भिन्न और कंटका-

कीर्ण है। मनुष्य अपनी उन्नति और प्रगति चाहता है—वह जीवन क्षेत्र के किसी भी भू-भाग को अछूता नही छोड़ना चाहता—साधना के क्षेत्र मे भी वह तप की चरम सीमा तक पहुचना चाहता है—जप, तप और ध्यान करता है और एक से एक कठोर आचरण करता है और चाहता है कि वह इन भव-बन्धनो को तोडकर चराचर विश्व मे अपनी आत्मा को कर्मों के सीमा-बन्धनो से मुक्त करे। वह निरन्तर प्रयास भी करता है किन्तु अपने लक्ष्य तक पहुचते-पहुचते भटक जाता है—किसी भी प्रकार की प्रगति करने से पूर्व उसे अपनी वर्तमान अवस्था का पूरा ज्ञान नही होता। आप बढते हैं, बढिये कौन मना करता है ? किन्तु बढने की धुन मे जितना मार्ग आपने नाप लिया है उस पर तो दृष्टि डाल लीजिए। वह उस सैन्य शक्ति का क्या लाभ ले सकेगा जो आगे बढने की मादकता मे सहार करता है, किन्तु विजित प्रदेश की सुव्यवस्था के लिये, चिन्तन नही करता—उसे दुर्बलता पर ध्यान देना चाहिये भूलो पर मनन करना चाहिये। तभी समाधान आप ढू ढ सकेंगे। तप उसकी इन्ही भूलो, पश्चात्तापो तथा चिन्तन का अनुष्ठापन है— तप मे वह शक्ति है जो तोप, तलवार और विषाक्त अस्त्रो मे नही होती—तोप, तलवार और तीरो के घावो को पाटा जा सकता है किन्तु तपरूपी आग तो भस्मसात् ही करती है—इसलिये तप को आध्यात्मिक आग की सज्ञा दी गयी है।

आत्मा, चेतन और जीव एक ही वस्तु के विविध रूप हैं। आत्मा ज्ञाता और द्रष्टा दोनो है। ज्ञाता का आशय जानने वाला और द्रष्टा का भाव देखने वाला है। चेतना उसका प्रमुख और प्रधान लक्षण है। चेतना कर्मों की जननी भी है तो वह उनकी विनाशिका भी है—वह कर्मों के बन्धन और शमरण दोनो का कारण है, यह उसका बहुरूपियापन है—तप है वहा कर्म की प्रधानता है—कर्म भोग या उत्पादक है—इस प्रकार भोग और योग प्रतिपल एक दूसरे के साथ छाया की तरह जुडे हैं—इस प्रकार कर्मों की निर्जरा तप का प्रथम और अन्तिम लक्ष्य होता है।

मानव अनन्त शक्ति का स्रोत है—कर्म उसका आराध्यदेव है। वह जो कुछ अर्जित करता है, कर्म के माध्यम से पाता है—आत्मा से सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य कर्म है। कर्म प्रारब्ध निर्माण की सहज प्रक्रिया है। भगवान् महावीर ने भी आत्म बोध देते हुए बताया है—पुरुषार्थ भविष्य का आधार स्तम्भ है—वह भविष्य का निर्माता है—भाग्य विधाता है—सत्सकल्पो के द्वारा वह भय मुक्त होता है। इस प्रकार आत्मा का वैभव भौतिक उपलब्धि नही वरन् आध्यात्मिक चिन्तन, मनन और अनुशीलन है। कर्म वह हथौडा और छेनी है, जिसके द्वारा कलाकार अपनी मन चाही भूमिका का प्रारूप तैयार करता है—यही स्थिति मानवमन की है—वह कर्मो के सबल से विकारो, दोपो का क्षमरण कर अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाता है—कर्म की वह अवस्था तप है, जिनके द्वारा मानव कर्मो का क्षमरण कर मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है।

ज्ञान और क्रिया मे मोक्ष के दर्शन होते हैं–साधक, तपस्वी और त्यागी अपनी साधना से नूतन कर्मों का आगमन सीमित करता है और साधना द्वारा पूर्व संचित कर्मों को क्षीण करता है–इस प्रकार जैन साधना का प्राण तत्व तप मोक्ष रूपी अमृत धारा मे मज्जन कराना है।

जैन साधना का एक रूप बाहर विद्यमान है–दूसरा अन्तर मे निहित है। इस तरह तप उभयमुखी है–जैन आगमो की भाषा मे तप के दो प्रकार बताये हैं—बाह्य तप और आन्तरिक तप अथवा आभ्यतर तप–व्रत, उपवास, रसत्याग, कायक्लेश, प्रतिसलीनता छह बाह्य तप हैं–तप का दूसरा रूप प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, और उत्सर्ग आभ्यतर हैं। बाह्य तप शारीरिक नियम और उपनियमो मे पल्लवित और पोषित है। आभ्यतर तप हृदय के अन्तस्तल का शुद्धिकरण है। जैनाचार्यों ने काय क्लेश और देह दमन को आध्यात्मिक शुद्धि का साधन माना है। यथार्थ तो यह है कि तप जीवन की एक कला–जीने की एक पद्धति है, एक जीवन आदर्श है–वह आत्मा की अन्तस्फूर्त पावनता और पवित्रता है। तप इस अर्थ मे जीवन का दिव्य जोतिर्मय प्रकाश पु ज है–उससे निखार पाकर देह स्वर्णमयी होती है। इस प्रकार जैन सस्कृति और दर्शन, तप, त्याग और तपस्या की त्रिवेणी है।

यदि जैन धर्म के प्राण तत्व पर दृष्टि डालें तो वास्तविकता प्रकट हो जावेगी। हमारे प्राणतत्त्व का केन्द्र बिन्दु आत्मा, कर्म और मुक्ति है। अत हमे इन तीन बिन्दुओ पर स्थिरचित्त हो सोचना चाहिये, तभी तप का माहात्म्य दृष्टिगत होगा।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, तप का पावन उद्देश्य आत्मा की निर्मलता है। आत्मा निर्मल कब होती है ? यह एक तथ्य है, जिस पर हमे मनन करना पडेगा। गन्दा कपडा स्वच्छ कब होता है, जब उसमे से मैल दूर हो जाता है–उस को दूर करने के लिये हम साबुन रूपी तेज का उपयोग करते हैं–ठीक वही दशा आत्मा की निर्मलता की है–जब आत्मा मे से काम क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी मल को दूर करते हैं आत्मा स्वर्णिम हो चिदानन्द की अनुभूति करता है। कर्मरूपी तप विज्ञान की वाणी मे आप इसे शोधक द्रव्य कह सकते हैं। आत्मा की शुद्धिकरण मे तप भी एक सबल, प्रभावी शोधक द्रव्य सिद्ध होता है।

विश्व के प्राय· सभी दर्शन आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। वे अपने-अपने विश्वासो, निष्ठाओ और मान्यताओ पर आत्मा की परिभाषा करते हैं। जैन धर्म मे ही नही, वरन् विश्व के सब ही मत–मतान्तरो और धर्म के अधिष्ठाताओ ने भी तप को सुखी जीवन का सरस, स्वादिष्ट सुफल कहा है, वैदिक धर्म के आचार्यों ने तो त अर्थात् तपस्या को वेदो की जननी होने का उपहार दिया है। तप ऋत और सत का

जनक है–वह ब्रह्म प्राप्ति का साधन और साध्य दोनो है। जैनाचार्यों ने तप को आत्मा का गुण कहा है। सृजनात्मक दृष्टि से तप आत्मोपलब्धि है, वह एक ऐसा प्रयोग है जो आत्मा और परमात्मा के बीच की कडी होने का गर्व करता है।

अनशन, तप, रसत्याग, काय क्लेश प्रतिसलीनता आदि तप जब सम भाव से अन्तर धारा के साथ आबद्ध हो जाते हैं, तो वह आन्तर बन जाता है, आत्म रूप हो जाता है और आत्मा के साथ एकाकार हो नये कर्मों के बन्धन को रोकता है। यह मत्र साधक की अनाकुलता, निष्कामता, स्थिरचित्तता तथा समवृत्ति पर अवलम्बित है। जितनी समता की तीव्रता होती है निर्मलता उतने ही वेग से आत्मा मे प्रस्फुटित होती है।

वर्तमान के भोग प्रधान युग मे–ऐसी भीमकाय अनशन तप की साधना करने वाली श्राविका, श्रीमती इचरज कुंवर लुणावत, धर्मपत्नी स्व० श्री गुमानमल लुणावत का साहस, क्षमता, आस्था, निष्ठा, विश्वास हृदय से अभिनन्दनीय हैं–उनकी तपस्या एक ऐतिहासिक घटना है, जिस पर सहसा विश्वास नही किया जा सकता–यद्यपि यह सब सकल्प की दृढता, निश्चय की दुरूहता और दृढता के मधुर फल हैं।

इस प्रकार जैनत्व की साधना अपने चैतन्य तत्त्व की स्वच्छता और पवित्रता है। अनन्त काल का सुपुप्त देवत्व साधना के पावन क्षणो मे ही जागृत होता है। जिन शासन मे तप का लक्ष्य कुछ नूतनता की प्राप्ति नही है–वरन् आवरण हटाने की अपेक्षा है। चैतन्य अन्तरमन मे प्रकाश होता ही है।

दीपक टिमटिमा रहा है–उस पर आवरण चढा हुआ है, वह प्रकाशवान है, उसमे जीवन ज्योति विद्यमान है वह तो आवरण से ढका हुआ है–इस प्रकार तप चैतन्य दीप पर से आवरण हटाने की पद्धति है–प्रक्रिया है, जीने की राह है-शाश्वत और सनातन विश्वास है।



तप ही जीवन है

—ले० महासती जसकुंवरजी म० सा०

जैन धर्म मे तप का महत्त्वपूर्ण एव विशिष्ट स्थान रहा है। भगवान वर्धमान स्वामी ने भी अपने समय मे प्रचलित तप को विशालता प्रदान की है। तप के द्वारा असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं। तप असाधारण मगलमय धर्म है, जिसके द्वारा अनादि काल से आत्मा राग-द्वेष तथा कर्मों की ग्रन्थियों से वद्ध है वह भी नष्ट हो जाती है। यथा—सुवर्ण अनादि काल से मिट्टी आदि के ससर्ग मे रहने पर भी जब उसे "क्षारमृतपुट" अग्नि आदि का सयोग उपलव्ध होता है तो वह अनादि-काल से मलिन सुवर्ण भी तपाने से निर्मल सौ टच का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार तप से मानव भी।

तप मे एक अचिन्त्य महान् शक्ति है। कितने ही ऋषि महर्षि आदि अनेक महापुरुषो ने तप के द्वारा अपनी आत्मा को परम पवित्र सुवर्ण के समान निर्मल वनाया था।

भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तराध्ययन सूत्र मे तप की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

"तव नारायण जुत्तेण, भित्तूण कम्भ कंचुय।
मुपी विगय संगामो, भवाओ परिमुच्चय॥

हे माधको! तप रूपी वाण से कर्म रूपी कचुक कवच को भेदन कर दो, जिससे सग्राम मे पूर्ण विजय प्राप्त कर महान् मार्ग की ओर प्रयाण करो।

जैन धर्म मे केवल तप के द्वारा शरीर को कृश करना ही नही, किन्तु शरीर कृश के साथ-साथ काम-क्रोध आदि कपायो पर विजय प्राप्त करना परम आवश्यक है।

जैन दर्शन मे तप के मुख्यत. दो प्रकार वताये हैं आभ्यन्तर—और वाह्य।

पञ्चाग्नि-तप तापना, धूनी तापना आदि तप नही, किन्तु ताप है। ऐसे तपो का जैन धर्म मे कोई विशिष्ट स्थान नही है। क्योकि जैन धर्म विशाल है, वह इन काय-क्लेश तपों तक ही सीमित नही है।

तप की परम महानता को सूचित करते हुए वाचकमुख्य उमास्वामी ने भी कहा है—

"तवसा निर्जरा च"

(तत्त्वार्थ सू० अ० ९)

तप के द्वारा भी कर्मों की निर्जरा होती है। तप के द्वारा अनेक जन्म-जन्मान्तरो के बँधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है। भगवान् वर्धमान स्वामी के समय भी तप का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। भगवान् ने भी कठोरतम साधन करके, कर्मों का क्षय करके कैवल्य ज्ञान का आलोक जगमगाया था। किन्तु वर्तमान युग मे भी अतीत की झांकी को याद दिलाते हुए जयपुर निवासी "श्रीमान् गुमानमल जी सा० लुणावत की धर्मपत्नी महान् तपस्विनी श्रीमती "इचरज कवर बाई" लुणावत ने भी इस दुष्कर पञ्चकाल मे कठिनतम तपश्चर्या अङ्गीकार करके जैनधर्म की विशिष्ट महत्ता को प्रदर्शित किया है। इन्होने इस दुष्कर तप को अङ्गीकार करके अपनी आत्मा को उच्च एव श्रेष्ठतर पद प्राप्त करने का असाधारण तप कर्म किया है। इनके जीवन को देखकर सभी मुमुक्षु प्राणियो को सोचना चाहिए कि आत्मा अनन्त शक्ति का पुञ्ज है, अनन्त शक्तियो का कोष है। इस शक्ति को हमेशा के लिए प्रकट कर उज्ज्वल-समुज्ज्वल बनायें न कि आत्मा को पतन के मार्ग पर अग्रेसर करे।

तप से आत्मज्ञान की उर्मियो का विकास होता है। यथा—

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण विजाणाइ से आया (आचाराङ्ग सूत्र)।

इसी से जागो जागो! अरे तुम क्यो नही जागते? परलोक मे अन्तर्जागरण प्राप्त होना दुर्लभ है।

वीती हुई रात्रिया कभी लौटकर नही आती।
मानव जीवन पुनर्वार पाना आसान नही।

"सवुज्झह किं सवोती खलु पेच्च दुल्लता।
तो हुवणमति राइओ नो सुलभ पुणरावि जीविय"।

। सूत्रकृताङ्ग सूत्रम्।

अत "तप" ही जीवन है।

——

विश्व-विजेता 'महावीर'

(भू०पू० राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्)

भ० महावीर को 'जिन' अर्थात् विजेता की उपाधि प्राप्त है। किन्तु उन्होंने किसी देश को नहीं जीता। उन्होंने विजय प्राप्त की थी अपने अतरग पर। वे 'महावीर' कहलाए। इस कारण नही कि उन्होने ससार के किन्ही युद्धो मे भाग लिया हो। किन्तु उन्होंने अपनी आत्म-वृत्तियो से युद्ध कर उन पर 'विजय' प्राप्त की थी। दृढता के साथ तप, सयम और आत्मशुद्धि एवं ज्ञानोपासना के द्वारा उन्होने मनुष्य-जीवन मे ही सिद्धत्व प्राप्त कर लिया था। अतः हम जो आज उनका 'निर्वाणोत्सव' मना रहे हैं, उसका ध्येय यही है कि उनके उदाहरण से दूसरो को भी आत्म-विजय के उच्च आदर्श की ओर बढने की स्फूर्ति मिल सके। मनुष्य का व्यक्तित्व कोई ऐसी वस्तु नही है, जो केवल संसार-चक्र मे फेंक दी गई हो। वह सजीव है जिसके कारण उसका दर्जा प्रकृति और समाज के भौतिक वातावरण से ऊंचा उठा हुआ है। यदि हम मानवीय आत्मा, आभ्यन्तर तत्व को नहीं पहचान सकते तो हम अपने आप को नष्ट कर बैठते हैं। हम मे से अधिकांश सांसारिक अशक्तियो मे ही अपने को खो बैठे हैं। हम भौतिक पदार्थों—स्वास्थ्य, धन-सम्पत्ति, घर-द्वार मे ही अपने को भूले हुए हैं। हम स्वय इनके वशीभूत हो गये हैं, वे हमारे अधीन नही रहे। ऐसे व्यक्ति अपनी आत्मा का घात करते हैं—वे ही 'आत्महतो जन' कहलाते हैं। इसलिये नाना ग्रंथकारो ने कहा है कि 'वही मनुष्य है जो ससार की समस्त विभूति के लिए कार्य करता है। जो सर्वथा स्वाधीन हो जाता है वही 'अर्हत्' है। वह जन्म, मरण तथा काल के वशीभूत नही रहता।'

भगवान् महावीर हमारे सम्मुख एक ऐसे आदर्श-पुरुष के प्रतीक हैं जो ससार के सब पदार्थों का परित्याग कर भौतिक बन्धनो मे फसकर नही रहे। उस आत्म-मार्ग पर हम किस प्रकार चलें, किन साधनो के द्वारा हम इस आत्मानुभव और स्वाधीनता की प्राप्ति कर सकते हैं? इन प्रश्नो के उत्तर हमारे शास्त्रो मे निहित हैं। हमारे शास्त्र बतलाते है कि यदि हम आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमे श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिए।

महावीर भगवान् ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र के निर्देश द्वारा ही इन्हीं तीन तत्वो का प्रतिपादन किया है। हम मे विश्वास होना चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए कि सासारिक वस्तुओ के परे भी कोई अधिक उत्कृष्ट पदार्थ है। केवल भक्ति, अध-भक्ति मे काम नही चलेगा। हमे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मनन द्वारा ही श्रद्धा और विश्वास के आधारभूत विषयो को ज्ञान और प्रकाश के तत्वो मे परिवर्तित किया जा सकता है। किन्तु केवल सैद्धांतिक ज्ञान भी पर्याप्त नही है। 'वाक्यार्थज्ञान-मात्रेण नामृतम्' केवल शब्दज्ञान द्वारा 'जीवन' प्राप्त नहीं किया जा सकता। हमे उन महान् सिद्धान्तो को अपने जीवन मे भी उतारना चाहिए। अतः चारित्र का होना भी उतना ही अनिवार्य है। हम दर्शन, प्रणिपात अथवा श्रवण से प्रारम्भ करके मनन परिप्रश्न पर पहुँचते हैं और वहा से फिर निदिध्यासन, सेवा या चारित्र पर। जैन आचार्यो ने बतलाया है कि आत्मानुभव की प्राप्ति के लिए इन तीनो की परमावश्यकता है। चारित्र अर्थात् सदाचार के कौन से नियम हैं ? इसके लिए विविध व्रतो को धारण करने का उपदेश दिया गया है। प्रत्येक जैन को पाच व्रत धारण करना आवश्यक होता है—उनमे अहिंसा की प्रधानता है। यद्यपि इस ससार में हिंसा से अपने को सर्वथा बचाना असम्भव है हमारा यह कर्तव्य है कि जहा तक हो सके अहिंसा के क्षेत्र का विस्तार करें। इस प्रकार अहिंसा वह आदर्श है जिसे हमने अपना लक्ष्य बिंदु बनाया है।

तप : व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में

डॉ० नरेन्द्र भानावत

भारतीय साधना-पद्धति मे तप का विशिष्ट स्थान है। इसे परम ज्योति और अग्नि कहा गया है। अग्नि की भाँति तपोसाधना से जहाँ आत्मा के विकार नष्ट होते हैं, वहाँ उससे नई शक्ति और प्रकाश भी मिलता है। तप की उष्मा पाकर आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है और धीरे-धीरे साधना का बल पाकर यह उष्मा विलक्षण ज्योति मे परिणत हो जाती है। यह परिणमन ही तपोसाधना का चरम लक्ष्य है।

भारतीय दर्शन मे और विशेषत जैन दर्शन मे आत्मा के चरम विकास की स्थिति को परमात्म दशा कहा गया है। दूसरे शब्दो मे सामान्य पुरुष ही अपनी आतरिक शक्तियो को जाग्रत कर, उनका विकास कर महापुरुष बन जाता है। उसमे ईश्वरत्व की झलक प्रतिबिम्बित होने लगती है। साधारण पुरुष से महापुरुष बनने की इस प्रक्रिया मे तप की विशेष भूमिका है। तप के द्वारा ही मन की सुपुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। जिस अनुपात मे ये शक्तियाँ जाग्रत होती जाती हैं, उसी अनुपात मे महानता का स्तर बढता जाता है।

तप का मूल धैर्य माना गया है—'तवस्स मूल धिती'। जब व्यक्ति मे धीर भाव का उदय होता है तब उसमे अन्य गुण स्वत चले आते हैं। शायद इसीलिये साहित्य शास्त्रियो ने हर नायक के पहले धीर विशेषण का प्रयोग किया है, यथा—धीरोदात्त नायक, धीर ललित नायक, धीर प्रशान्त नायक, और धीरोद्धत नायक। जहाँ धैर्य होता है वहाँ अनुकूल—प्रतिकूल परिस्थितियो मे सतुलन बना रहता है। यह सतुलन ही जीवन मे स्थैर्य और गतिशीलता जोडे रखता है।

जैन-दर्शन मे तप को व्यापक परिपार्श्व मे देखा गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी क्षमता और रुचि के अनुसार तप का विधान किया गया है। इस दृष्टि से मोटे रूप से तप के दो भाग किये गये हैं—बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाह्य तप

का विधान इन्द्रिय–विषयो से दूर हटने के लिये किया गया है। ये तप छ. प्रकार के माने गये हैं—अनशन, उनोदरी, भिक्षाचरी, रस परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलीनता। इनमे से प्रारभ के चार तप आहार से सम्बन्धित है। जब तक आहार पर सयमन नही किया जाता, तब तक मन की शक्तियो को उजागर नही किया जा सकता। आभ्यन्तर तपों का विधान विकारो को दूर हटाने के लिये है। ये तप भी छ प्रकार के हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। जब व्यक्ति इन तपो की साधना करता है तब उसका जीवन इतना पवित्र, प्रामाणिक और चरित्रनिष्ठ बन जाता है कि उसके सम्पर्क से समाज मे सद्गुणो का विस्तार स्वत होता चलता है। इस प्रकार तप की वैयक्तिक साधना समाज को स्वस्थ, सशक्त और सतेज बनाने मे सहायक होती है।

केवल भूखा रहना वास्तविक अर्थ मे सच्चा तप नही है। यह तो तप का आरम्भ मात्र है। अनशन तप मे भोजन का त्याग भर करना पडता है। पर ज्यो-ज्यो तप सूक्ष्म बनता जाता है, उसमे विषय और विकार छूटते चलते हैं और अन्तत. भोग से सर्वथा विरक्ति हो जाती है। श्रेष्ठ तप वह है जिससे मन किसी प्रकार का अमगल न सोचे, इन्द्रियो की हानि न हो और नित्यप्रति की धर्म क्रियाओ मे विघ्न न आये। तप व्यक्ति को कमजोर या निष्क्रिय नही बनाता, वह उसकी सक्रियता और जीवन्त शक्ति को सतेज करता है। व्यक्ति और समाज के सदर्भ मे तप की यही सार्थकता है।

आज ससार की दृष्टि सयम और त्याग की अपेक्षा भोग और सचय पर अधिक टिकी हुई है। हमारे सारे कार्य-व्यापार भोग-लिप्सा की ओर उन्मुख हैं। ऐसे समय मे भगवान् महावीर के २५००वें परिनिर्वाण वर्ष के उपलक्ष मे उनके सच्चे तपोमार्ग पर चलने का सत्सकल्प और साहस किया है श्रीमती इचरज कु वर ने। उन्होंने लगभग ६ मास की दीर्घ तपस्या कर आज के भौतिकवादी युग मे आत्म-बल और आध्यात्मिक साधना की एक चमत्कृति सी पैदा कर दी है और अतीत के दीर्घकालीन तपस्वियो के विस्मय-विमुग्धकारी चित्र वर्तमान मे प्रत्यक्ष कर दिखाये हैं। ऐसी महान् तपस्विनी का हार्दिक अभिनन्दन और अमित मगलकामनाए।

———

तप का प्रथम भेद :

अनशन तप

—उमेशमुनि 'अणु' (रतलाम)

मोक्ष मार्ग को 'चउकारण सजुत्त' (=चतुष्कारण-सयुक्त)[1] कहा है। वे चार कारण मिलकर ही मोक्ष मार्ग मे परिवर्तित हो जाते हैं।[2] वे चार कारण इस प्रकार हैं —सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप।[3] इन कारणो मे सम्यक् तप अन्तिम कारण है।

तप की परिभाषा :

किसी मनीषी ने—'इच्छाओ के निरोध' को तप[4] कहा है। अत इस परिभाषा के अनुसार, कारण मे कार्य का आरोप करके, यह कहा जा सकता है कि 'जिन क्रियाओं से इच्छाओ का निरोध होता है, वे क्रियाएँ भी तप हैं'।

तप, क्रिया-भेद से दो प्रकार का है। बाह्य साधनो—स्थूल क्रियाओ के त्याग से या बाह्य साधनो के माध्यम से किया जाने वाला इच्छाओ का निरोध बाह्य तप है और आभ्यन्तर विकृत क्रियाओ—सूक्ष्म क्रियाओ के त्याग से या आभ्यन्तर साधनो के माध्यम से किया जाने वाला इच्छाओ का निरोध आभ्यन्तर तप है। इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार के तप जिनेन्द्र-देव कथित तपोमार्ग मे वर्णित हैं।[5]

अनशन तप :

भगवान् ने बाह्य तप के छह भेद बतलाये हैं,[6] उनमे अनशन प्रथम बाह्य तप है। अनशन (अन्+अशन) शब्द का अर्थ है—आहार का त्याग। आहार बाह्य या दृष्टि-गोचर होने वाला पदार्थ है और शरीर भी बाह्य-स्थूल पदार्थ है। इस प्रकार भोज्य पदार्थों के त्याग या शरीर के माध्यम से आहार-प्रवृत्ति के त्याग के द्वारा भोजन की इच्छा के निरोध मे अनशन तप निष्पन्न होता है। अत वह बाह्य तप है।

---

१ उत्तरज्झयणाइ २८/१, २. उत्तर० २८/२, ३ उत्तर० २८/२, ४. इच्छा-निरोधनस्तप', ५. उत्तर० ३०/७, ६ उत्तर० ३०/७, ८।

अनशन तप का उद्देश्य :

जीव अनादिकाल से आहारिक है। वह तीन समय से अधिक कभी भी अनाहारिक नही रहा। उस अल्पकाल मे भी कर्म पुद्गलो का ग्रहण तो चलता ही रहता है। पर आहार पर पदार्थ है। पर की ग्राहकता रूप वृत्ति होने के कारण आहारिकता—जीव का वैभाविक भाव है। जीव का निज स्वरूप तो अनाहारिकता है। जीव अपने इस मूल स्वभाव से परिचित नही है और आहार लेने की यान्त्रिक प्रक्रिया मे ही उलझ रहा है। इस आहार-प्रवृत्ति की यान्त्रिकता को तोडना—यह अनशन तप का प्रथम उद्देश्य है।

जो आहार का ग्रहण स्थूल शरीर से होता है—वह दो प्रकार से होता है—रोम से और प्रक्षेप रूप से। रोम से ग्रहण होने वाला आहार निरन्तर एव स्वत. होता है। अत. उस आहार का इन्द्रियो के विषय से कुछ भी सम्वन्ध नही है। पर प्रक्षेप आहार थोडे-थोडे समय के अन्तर से गृहीत और प्रयत्नजन्य होने के कारण इन्द्रियो से सम्वन्वित है। प्रक्षेपाहार का सीधा सम्वन्ध तो रसनेन्द्रिय से है। पर रसनेन्द्रिय के साथ घ्राणेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय भी जुडी हुई है। अत. प्रक्षेपाहार के साथ तीनो इन्द्रियो के विषय सलग्न हैं। रसनेन्द्रिय का विषय एक ऐसा विषय है कि स्पर्श के वाद जीव का इसके साथ अधिक सम्बन्ध रहने की सम्भावना है और मनुष्य गर्भ से जन्म लेते ही इस विषय के सेवन मे जुट जाता है। रसासक्ति के साथ काम-आसक्ति का सम्बन्ध रहा हुआ है। अत प्रक्षेपाहार के त्यागरूप अनशन तप का दूसरा उद्देश्य तीन इन्द्रियो के विषय-जय के साथ काम-वासना का जय भी है।

अनशन तप का लक्ष्य :

अनशनादि तप से इह लौकिक सिद्धियाँ और पारलौकिक विशिष्टताएँ प्राप्त हो सकती हैं। परन्तु भगवान् महावीर देव ने इस विषय मे स्पष्ट निर्देशन करते हुए कहा है—'ऐहिक ऋद्धि, सिद्धि, लब्धि, भौतिक उपलब्धि आदि के लिये या पारलौकिक सुख-समृद्धि, इन्द्रादिक पद, सौन्दर्य, शक्ति आदि के लिये या यश. कीर्ति, प्रशसा के लिए तप का अनुष्ठान नही करना चाहिये। परन्तु एक मात्र कर्मों की निर्जरा के लिए तपश्चरण करना चाहिये।'[७]

अनशन तप के भेद

अनशन तप के दो भेद हैं—(१) यावत्कथित और (२) इत्वरिक।[८] यावत्कथित अनशन अर्थात् जीवन भर के लिए आहार का त्याग। अपने जीवन के अन्तिम क्षणो को समीप जानकर, यह अनशन ग्रहण किया जाता है। इसके तीन[९]

---

७ दसवेयालिय ९/४/४, ८ उत्तर० ३०/९, ९ उत्तर० ५/३२, आयारग १/९।

या दो[10] भेद हैं। तीन भेद निम्नलिखित हैं—(१) भक्त प्रत्याख्यान, (२) इगिनीमरण या इगितमरण और (३) पादपोपगमन।[11]

(१) तीन या चार आहार का जीवन भर के लिए त्याग करना—भक्त-प्रत्याख्यान है।

(२) चारो आहार के त्यागपूर्वक नियत क्षेत्र मे ही जीवनपर्यन्त रहना 'इगिनीमरण' है व

(३) चारो आहार के त्यागपूर्वक, मल-मूत्रादि के विसर्जन के क्षणो के सिवाय जीवन भर के लिए कायचेष्टा का निरोध करके स्थित रहना 'पादपोपगमन' है।

यावत्कथित अनशन के अन्य प्रकार से दो-दो भेद किये हैं। यथा—(१) सवियार और (२) अवियार या (१) सपडिकम्म और (२) अपडिकम्म या (१) नीहारिम और (२) अनीहारिम।

नियत काल के लिये आहार के परित्याग को इत्वरिक अनशन तप कहते हैं। इस तप मे कम से कम एक मुहूर्त के लिए आहार त्याग किया जाता है। उत्कृष्ट काल मर्यादा विभिन्न तीर्थङ्करो के शासन काल मे विभिन्न प्रकार की होती है। भगवान् ऋषभदेव के शासनकाल मे एक वर्ष की, भगवान् महावीर देव के शासन काल मे छह मास की और मध्य के तीर्थङ्करो के शासन काल मे एक वर्ष और छह मास के बीच की इत्वरिक अनशन तप की काल-मर्यादा कही गई है।

इस तप के अनेक भेद-प्रभेद हैं। हम कल्पना कर सकते हैं कि मुहूर्त, पौरुषी, एक अहोरात्र, दो अहोरात्र आदि काल-विभाग के अनुसार अनेक भेद हो सकते हैं। पर इसके सिवाय श्रेणितप, प्रतरतप, घनतप, वर्गतप, वर्ग वर्गतप, प्रकीर्णक तप[12] या गुणरत्न सवत्सर तप, कनकावली तप, मुक्तावली तप, सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रोत्तर प्रतिमा, लघुसिंहनिष्क्रीडित, महासिंह निष्क्रीडित[13] आदि या कर्मचूर तप, धर्मचक्र तप आदि अनेक भेद-प्रभेदो की योजना आगमो और ग्रन्थो मे दिखाई देती है।

अनशन तप मे जल का उपयोग :

चतुर्विध आहार त्याग रूप अनशन तप मे तो जल के उपयोग का प्रश्न ही नही उठता है। पर त्रिविधाहार त्यागरूप अनशन तप मे जल का उपयोग किया जाता है तो फिर इस विषय मे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या उस तप मे सामान्य जल का उपयोग किया जा सकता है? आचार्यों ने इस प्रश्न का समाधान

---

१०. उत्तर० ३०/१२-१३, ११. आयारग, १२ उत्तर० ३०/१०-११, १३ अन्तगडसुत्त।

करते हुए विधान किया है कि यथाप्राप्त सचित जल का उपयोग अनशन तप मे नही किया जा सकता है। अनशन मे अचित्त (गर्म या धोवन) जल का उपयोग ही विहित है।

धोवन (किसी अन्य उचित पदार्थ से स्पर्श-परिणत) जल का उपयोग अट्ठम-भक्त (तेले) तक ही उचित है। तीन दिन से आगे के तप मे धोवन का उपयोग पूर्वाचार्यों के द्वारा वर्जित है। पर स्थानकवासी-परम्परा मे धोवन के आगार से दीर्घ तपश्चरण किया जाता है।

यदि कोई कारण न हो तो अनशन तप से दोपहर (पुरिमड्ढ) या डेढ पहर (साड्ढ पोरिसी) तक चारो आहार का त्याग करना योग्य है। दिन के दूसरे पहर मे लगाकर सूर्यास्त के एक मुहूर्त पूर्व तक अनशन तप मे पानी के उपयोग का काल है। सूर्यास्त के एक मुहूर्त पहले पुनः चारो आहार का त्याग कर लेना चाहिए। उस मर्यादित काल मे भी पानी की मात्रा या पानी पीने के समयो की मर्यादा करना योग्य है।

अनशन तप के आगार ·

चतुर्विधाहार त्याग रूप अनशन मे चार आगार (छूट) हैं और त्रिविधाहार त्याग रूप अनशन मे तेले तक दस आगार है। वे इस प्रकार है· (१) अनाभोग—प्रतिज्ञा की विस्मृति के कारण या अनजान अवस्था मे कोई खाने-पीने की वस्तु मुँह मे डाल लेना या चले जाना, (२) महासागार ·—अकस्मात्-अनायास ही किसी वस्तु का मुँह मे गिर जाना या किसी के द्वारा जबरन मुँह मे कोई वस्तु ठूँस दिया जाना, (३) महत्तरागार —सेवा आदि का विशिष्ट कार्य होने पर, उस कार्य को सम्पादन करने के लिए, गुरुजन की आज्ञा से तप मे आहार कर लेना और (४) सत्व समाहिवत्तियागार—तीव्र रोगादि के आक्रमण होने पर होने वाले आर्त्त भाव का परिहार करने हेतु औषधादि का सेवन करना। इसके सिवाय साधुओ के अनशन तप मे तेले तक परिट्ठावणियागार (साथी साधुओ के द्वारा यत्न पर लाये हुए और सबके द्वारा खा लेने पर बचे हुए आहार को खाना) नामक पाँचवा आगार और होता है।

त्रिविधाहार त्याग मे उपर्युक्त आगारो के सिवाय पानी के छह आगार और होते हैं—(१) लेवाड-दाल आदि का धोवन, इमली, खजूर, दाख आदि का पानी, (२) अलेवाड़—छाछ की आँच, आँवले आदि का ऐसा धोवन जिसका पात्र मे लेप नही लगता हो, (३) अच्छ ·—गर्म जल, लौंगादि से शस्त्रपरिणत निथरा हुआ स्वच्छ जल, (४) बहल :—तिल, चांवल आदि का मांड, (५) ससित्थ —आटे

आदि से भरे हुए पात्र आदि का आटे आदि के कण से युक्त धोवन और (६) असित्थ —आटे आदि के भरे हुए पात्रादि का छना हुआ कण रहित धोवन।

प्रत्याख्यान विधि :

संकल्प से युक्त किये हुए व्रतादि का महत्त्व है। अकस्मात् या कारणवशात् निराहार रह जाना—अनशन तप नही है। जो साधक राइय प्रतिक्रमण करते हैं उन्हे छट्टे आवश्यक मे 'काउस्सग्ग' मे और उपासकादि जो प्रभात मे प्रतिक्रमण नही करते हैं, उन्हे प्रात काल तीन बार नमोक्कार मत्र का स्मरण करके, स्थिर होकर यह चिन्तन करना चाहिये कि—आज मुझे क्या तप करना चाहिये? यदि उपवास करने की इच्छा हो तो उसकी भावना करे और फिर गुरुजन से वन्दनपूर्वक उस तप के प्रत्याख्यान ले और गुरुजन के प्रत्याख्यान देने के बाद पुन उस पाठ को स्वय दुहरावे। यदि गुरुजन समक्ष न हो तो तीन बार नमोक्कार मत्र के स्मरणपूर्वक गुरु को भाववन्दन करके स्वय ही प्रत्याख्यान पाठ का स्पष्ट उच्चारण करके प्रतिज्ञा ग्रहण करे।

अनशन तप कब किया जाता है?

भगवान् महावीर देव ने अपने अन्तिम उपदेश उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवे अध्ययन मे साधुओ के आहार त्याग के छह कारण बताये हैं—(१) आतङ्क मे, (२) रोग मे, (३) उपसर्ग मे, (४) ब्रह्मचर्य पालन के लिए, (५) तप के लिए और (६) देह परित्याग हेतु। इन छह कारणो मे तप व देह परित्याग अनशन तप के हेतु हैं।

इन कारणो पर विचार करने पर अनशन तप करने का कोई नियत काल निर्णीत नही होता है अर्थात् ये छह कारण जब भी उपस्थित हो तभी यह तप किया जा सकता है। यो शास्त्र मे अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा ये छह तिथियाँ पौषध व्रत के लिए बताई गई हैं और व्यवहार की दृष्टि मे दीर्घकालीन अनशन तप हेतु वर्षाकाल विशेष रूप से सुविधाजनक माना गया है। क्योकि वर्षा ऋतु मे जठराग्नि प्राय मन्द हो जाया करती है। अत उस काल मे दीर्घ अनशन करना सरल पडता है।

अनशन (उपवास) की धारणा

वर्तमान मे कही-कही उपवास करने के एक दिन पहले 'धारणा' करने की पद्धति प्रचलित है। धारणा अर्थात् उपवास को सरल बनाने के लिए, उपवास के पूर्व अमुक पदार्थों को ग्रहण करना। धारणा मे अधिकतर भारी (गरिष्ठ) पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं। ऐसी धारणा की परिपाटी अधिकाशत पर्युषण बैठने के और सवत्सरी के एक दिन पूर्व प्रचलित है—प्राय अन्य दिनो मे नहीं। पर ऐसा करने

उपवास सरल होने के बजाय कठिन पड जाता है। वस्तुत ऐसी धारणा करना ठीक नही है, क्योकि अनशन तो देह और अन्न की ममता के विसर्जन के लिये किया जाता है।

उपवास का पारणा

उपवास से भी अधिक उसके पारणे मे सतर्कता रखने की आवश्यकता रहती है। दीर्घ तप के पारणे मे यह बात विशेष रूप से लागू होती है। आज का सहनन ऐसा नही है कि पारणे मे कैसा भी भोजन पच जाय। पारणे मे अपथ्य होने पर कुछ रोगादि उत्पन्न हो जाते हैं तो दोष तपस्या को दिया जाता है। अत सावधान रहना ही उत्तम है। पारणे के वाद खाने की इच्छा और प्यास भडकने की सम्भावना रहती है। पर खान-पान पर संयम रखते हुए अपनी इच्छाओ पर अकुश रखना चाहिये।

आजकल पारणे मे काली मिर्च का पानी, मूग की दाल का पानी, कैए का पानी, दूध आदि प्रवाही पदार्थ लिये जाते हैं। इनमे भी मात्रा की मर्यादा आदि का ध्यान रखना चाहिये। कही-कही दीर्घ तप के पारणे के दूसरे दिन पुन. एक उपवास करने की और कुछ-कुछ काल के अन्तर से कुछ न कुछ तप करने की रीति प्रचलित हैं; जिससे पारणे के वाद गृहीत पदार्थों से उत्पन्न दोष पच जायें। इस विषय मे पूरी आचार-पद्धति कही लिखित रूप मे प्राप्त नही है। अलग-अलग प्रदेशो मे अपने-अपने क्षेत्रानुसार विविध पारणा-पद्धतियाँ प्रचलित है। प्राकृतिक चिकित्सा मे शारीरिक दृष्टि से उपवास कराये जाते हैं। अत उसमे दीर्घ उपवास के वाद भोजन लेने का एक विशिष्ट क्रम निर्धारित किया जाता है। उस पद्धति के अनुसार जितने दिन के उपवास हो, उससे दुगुने दिन प्राय. सामान्य भोजन पर आने मे लगते हैं। पर उस पद्धति मे शारीरिक दृष्टि ही होने के कारण सावधानता रखी हुई है।

पारणे की विधि

पारणे के दिन कम से कम 'नमुक्कार सहिय' (सूर्योदय के वाद एक मुहूर्त तक) प्रत्याख्यान का सामान्य विधान है ही। दीर्घ तप के पारणे के दिन प्राय पौरुषी (एक प्रहर दिन तक) के प्रत्याख्यान किये जाते हैं। इतना समय निकल जाने के वाद प्रत्याख्यान पारे जाते हैं। प्रत्याख्यान पारने मे तीन या पाँच वार णमोक्कार मत्र का स्मरण किया जाता है। फिर तप के आनन्द के साथ पूर्ण होने से तप के प्रति प्रमोद भावना भाते हुए, फासिय पालिय ' का पाठ वोला जाता है और तप मे जानते-अजानते कोई दोष लगा हो उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कड' दिया जाता है। फिर अपने गुरुदेव को अजलिबद्ध भाव नमस्कार करके, वारहवें व्रत के निष्पन्न होने

की भावना भाई जाती है। यदि साधु-साध्वियो का योग मिल जाये तो उन्हे प्रसन्नतापूर्वक सुपात्र दान दिया जाता है। यदि साधु के पारणा हो तो वह गुरुजनो और सार्धमिको को आमन्त्रण करता है। फिर उनकी आज्ञा से पारणा करता है।

प्रारम्भिक अनशन

जब प्रथम बार ही अनशन तप किया जाता है तब कई साधको को कठिनता का अनुभव होता है। क्षुधा-वेदनीय कर्म सताता है। वायु और पित्त का प्रकोप बढ जाता है। प्रत्याख्यान का विस्मरण हो जाता है। उपवास करने मे ज्यादा लम्बा अन्तर पडने पर भी ऐसी शिकायतें हो सकती हैं। पर दृढ सकल्प से इन या इन जैसी अन्य बाधाओ पर जय प्राप्त की जा सकती है और धीरे-धीरे तपश्चरण का अभ्यास हो जाने से ये बाधाएँ प्राय दूर हो जाती हैं। पर दीर्घ तप सबकी प्रकृति के अनुकूल नही भी पडता है।

अनशन तप का प्रभाव

अनशन के प्रभाव को तीन स्तरो पर देखा जा सकता है। यथा—(१) तप—साधना के समय होने वाला शरीरगत प्रभाव, (२) उसके फलस्वरूप होने वाला आत्मगत प्रभाव और (३) तपोजन्य फल-प्रभाव।

(१) **शरीरगत प्रभाव** —अनशन तप करने पर शरीरगत मल का और धातुओ का शोषण होता है। मल के शोषण से शरीर मे विक्षोभ होता है। पर तप के अभ्यस्त बन जाने के बाद प्राय ऐसा विक्षोभ नही होता है और यदि उत्पन्न होता है तो क्षण-स्थायी ही रहता है। अनशन व्रती का रक्त गाढा हो जाता है, हड्डियाँ पतली हो जाती हैं, मास सूख जाता है और शरीरगत जीर्ण कोष्ठक कोप नष्ट हो जाते हैं। अनशन के प्रभाव से शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

(२) **आत्मगत प्रभाव** —अनशन तप के शरीरगत प्रभाव के कारण आत्मगत प्रभाव के भी अनेक रूप बनते हैं। इसके प्रभाव से परिणाम-विशुद्धि मे सहायता मिलती है, साहस की वृद्धि होती है, ब्रह्मचर्य के पालन मे दृढता आती है, आदि। अन्तिम समय मे अनशन के प्रभाव से धातुओ का उत्ताप शमित हो जाने के कारण परिणामो मे दृढता रहती है और देह त्याग मे कष्ट नही होता है।

(३) **अनशन तप का फल** —अनशन तप के दो प्रकार के फल—ऐहिक और पारलौकिक हैं। आमोसही, खेलोसही, जल्लोसही, विप्पोसही आदि लब्धियाँ, स्वास्थ्य लाभ, उपसर्ग अभाव आदि ऐहिक फल हैं और कर्मों की निर्जरा और देवत्व की प्राप्ति पारलौकिक फल हैं। देव भव के बाद के मनुष्य भव मे उत्तम कुल, आरोग्य, सौन्दर्य, वैभव आदि की प्राप्ति भी इसके फल रूप मे वर्णित हैं।

अनशन तप के अधिकारी :

अनशन तप कौन कर सकते हैं ? चारो तीर्थों मे से अनशन तप करने का अधिकार किसे है ? चारो ही तीर्थों को अनशन तप करने का अधिकार है। शास्त्रो मे श्रावक धर्म के आराधको के लिए प्रत्येक मास मे छह पौषध करने का विधान है। यद्यपि कथा-ग्रन्थो मे और पिछले ऐतिहासिक काल मे श्रावको के द्वारा सुदीर्घ अनशन तप करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं, पर शास्त्रो मे ऐसे उदाहरणो का उल्लेख सामान्य ही है। सवर सहित निर्जरा का विशेष महत्त्व है। पर छट्ठे गुणस्थान के पहले के गुण स्थानो मे तप का निषेध नहीं किया गया है। हाँ, तप करते हुए भी तद्‌रूप अध्यवसाय स्थान की प्राप्ति उन स्थानो मे नही होती है। पर अपने-अपने उत्साह के अनुसार अनशन तप का अधिकार किसी से छीना नही है।

अनशन तप के आराधक

मोक्ष मार्ग के पथिक अधिकाश साधको ने किसी न किसी रूप मे अनशन तप की आराधना अवश्य की है। तीर्थङ्कर भगवान् भी इस तप की आराधना करते हैं। भगवान् ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष की अपनी छद्मस्थ अवस्था मे वर्षी तप आदि विविध प्रकार के अनशन तप किये। अन्तिम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर देव ने लगभग साढे बारह वर्ष के अपने साधना काल मे लगभग ग्यारह वर्ष से अधिक काल, छह मासी आदि विविध अनशन तप मे व्यतीत किया और सभी तीर्थङ्कर (इस अवसर्पिणी काल के) निर्वाण के पूर्व कुछ काल से अन्तिम क्षण तक अनशन मे स्थित रहे। भगवान् महावीर देव के प्रमुख शिष्य आद्य गणधर भगवान् इन्द्रभूतिजी निरन्तर छट्ठ-छट्ठ का तप करते रहे। स्कन्धक, धन्य आदि भगवान् के साधु और काली, सुकाली आदि आर्याओ ने गुण-रत्न सवत्सर, रत्नावली, कनकावली आदि विविध भाँति के तप किये। जैन सन्तो का पिछला इतिहास भी अनेक तपस्वी नर रत्नो मे आलोकित है और अतीत के श्रावक श्राविकाओ ने भी तपश्ज्योति से अपनी आत्म-प्रभा की वृद्धि की तथा वर्तमान काल के उपासक, उपासिकाए भी इस तप का अनु-सरण करके, धर्म मार्ग की प्रभावना कर रहे हैं।

तप का अजीर्ण :

अनशनादि तप मनोविकार आदि पर जय प्राप्त करने की विशिष्ट साधना है, परन्तु अपने बलाबल का विचार किये बिना ही अयोग्य रीति से उनका प्रयोग करने पर मानसिक विकारो मे कदाचित् उग्रता आने की सम्भावना रहती है। ऐसी अवस्था को तप का अजीर्ण कहा जाता है।

दीर्घ अनशनी मे क्रोध की मात्रा बढने की सम्भावना रहती है क्योकि अधिक उपवास करने पर शरीर मे रूक्षता आ जाती है। अत. आन्तरिक सावधानी मे

अश मात्र भी कमी आने पर स्वभाव मे चिडचिडाहट का लक्षण प्रकट होना आश्चर्य की बात नहीं है और वैसे भी दुर्बल व्यक्ति को क्रोध जल्दी ही आ जाता है। पर तप मे ऐसी अवस्था का होना तप का अजीर्ण है, अर्थात् तप की मात्रा अपनी शक्ति से अधिक हो गई है या तप का पाचन नही हुआ है। अत अनशन व्रती को इस बात का सदा ध्यान रखकर, अपने क्रोध को क्षीण करने का, जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञानियो और अनुभवियो ने तप के अजीर्ण के विविध उपचार बतलाये हैं। जिनमे धर्म ध्यान के 'अपाय विचय' (कर्मबन्ध के हेतुओ के दोषो का चिन्तन) और 'विपाक विचय' (कर्म के फलो का चिन्तन) नामक भेदो और मैत्र्यादि भावनाओं का अभ्यास प्रमुख उपाय है।

लौकिक लक्ष्य से किया जाने वाला अनशन तप :

किसी भी प्रकार की धर्म आराधना मे लौकिक आकाक्षा करना निषिद्ध है। भगवान् ने ऐहिक, पारलौकिक या कामभोग सम्बन्धी आशंसाओ को तप के अतिचारो के रूप मे बताया है। पर प्राचीन काल से लौकिक सिद्धियो के लिए अनशन किया जाता रहा है। चक्रवर्तियो ने छह खण्ड साधते समय अट्ठम तप किये। देवो को बुलाने के लिये कृष्ण वासुदेव, अभय कुमार आदि ने तप किये। इन बातो का शास्त्रो मे ही उल्लेख है। चरित्र ग्रन्थो मे वासुदेवो, प्रतिवासुदेवो आदि महापुरुषो के द्वारा विद्याओ के साधने आदि लौकिक दृष्टियो से तप-आराधना करने का वर्णन है और तप के माध्यम से उन लौकिक आकाक्षाओं के पूर्ण होने का भी उल्लेख है। इसी प्रकार मंत्र शास्त्रो मे भी मन्त्र की सिद्धि के लिए अमुक तप आदि करने के विधान हैं। अत्यधिक धर्मनिष्ठ व्यक्तियो ने भी अतीत मे ऐसे तप किये हैं और वर्तमान मे भी करते हैं। साधुओ ने भी सङ्कट के क्षणो मे शासन देवी आदि के आह्वान के लिए ऐसे तप अनुष्ठान किये हैं। पर हमे यह समझ लेना चाहिए कि आध्यात्मिक दृष्टि से उस तप का कुछ भी महत्त्व नही है। ऐसे तप अनुष्ठाता के तप को अनशन तप मे गिना ही नही जाता है। धर्मनिष्ठ साधक भी कारणवशात् ऐसा तप करते हुए भी उस तप को धर्म आराधना नही मानता है।

अनशन और चिकित्सा :

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रो मे सीमित रूप से उपवास चिकित्सा के प्रयोग करने के उल्लेख प्राप्त हैं। 'ज्वरनाशाय लङ्घनम्' (बुखार को नष्ट करने हेतु लङ्घन-उपवास एक रामबाण उपाय है) आदि वाक्यो से भी इस बात का पता चलता है। भगवान् महावीर देव ने भी रोग मे आहार त्याग की विधि बतलाई है। आधुनिक समय मे पश्चिम के प्रयोगशील महानुभावो ने 'नेचरोपेथी' नामक चिकित्सा प्रणाली को विकसित किया है। उसी की एक शाखा के रूप मे उपवास-चिकित्सा है। तत्त्त

चिकित्सक महानुभावो ने चिकित्सा के क्षेत्र मे उपवास के विविध प्रयोग किये हैं। उन महानुभावो ने अपने अनुभवो के आधार पर बहुत कुछ लिखकर, एतद्विषयक एक चिकित्सा शास्त्र का ही निर्माण कर दिया है और उसके तथा अन्य अनुभवो के आधार से तत् तत् चिकित्सा केन्द्रो मे इस प्रणाली का विधिवत् उपयोग भी होता है। पर जितना अध्यात्म और चिकित्सा मे भेद है, उतना ही अनशन और उपवास-चिकित्सा मे भेद है। उपवास-चिकित्सा का लक्ष्य शरीर है, जबकि अनशन तप का लक्ष्य आत्मा है।

अनशन और राजनीति :

महात्मा गान्धी के राष्ट्र के नेता के रूप मे आविर्भाव होने पर अनशन का एक और रूप उभरा। गान्धीजी मे राजनीति और अध्यात्म दोनो का मिश्रण रहा है। वस्तुत आध्यात्मिक वृत्ति गान्धीजी मे प्रबल थी। पर तत्कालीन स्थिति के कारण देश भक्ति भी उनके सत्य के प्रयोगो मे सम्मिलित हो गयी। इसी कारण उनके आध्यात्मिक साधन भी राजनीति मे प्रयुक्त होने लगे। उन्होने सत्य के विनम्र आग्रह के रूप मे राजनीति मे अनशन का प्रयोग किया। उनके नही चाहते हुए भी उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता के कारण अनशन जनता मे एक शस्त्र के रूप मे स्थापित हो गया। अत उसका शुद्ध रूप कायम न रह सका। राजनीति में आजकल भी अनशन का प्रयोग होता है। पर उसका रूप बहुत विकृत हो चुका है। राजनीतिक अनशन चाहे जितना शुद्ध हो, चाहे जितनी सत्त्वशाली आत्मा के द्वारा प्रयुक्त हो, पर आध्यात्मिक अनशन और उसमे निराहार दशा और एक ही सज्ञा के सिवाय कुछ भी साम्य नही है। आध्यात्मिक अनशन नि शस्त्र भाव मे परिणत होने वाली स्व-पर के लिए क्षेमकरी साधना है जबकि राजनीति अनशन निरुपाय व्यक्ति के शस्त्र के रूप मे परिणत हो जाता है।

अनशन तप के विषय मे कुछ भ्रम :

अनशन तप के विषय मे आजकल कुछ भ्रम भी फैल रहे हैं। कइयो का कहना है कि अनशन तप आदि बाह्य तप, आभ्यन्तर तप की पूर्व भूमिका मात्र है। इस कथन का यदि यह आशय हो कि ध्यान की निष्पत्ति के लिए इस तप की उचित मात्रा मे आराधना करना चाहिए—वहा तक तो उपर्युक्त कथन सगत है परन्तु आभ्यन्तर तप के नाम पर यदि इस तप के निषेध के लिए या ध्यान से स्वतत्र रूप में इसके विधान के लिए यह बात कही जाती हो तो यह कथन असगत है। भले ही, उपवास से ध्यान मे सहायता मिल सकती हो, ध्यान के लिये विशेष काल मिल सकता हो, ध्यानादि क्रिया के बिना अनशन तप अल्प फल प्रदाता बनता हो या जिन उपवास आदि से आर्तध्यान आदि की वृद्धि होकर, स्वाध्यायादि आन्तरिक तपो मे हानि होने पर, उन्हे बन्द कर देने की गुरुजनो की आज्ञा हो, फिर भी अनशन तप

का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। स्वय भगवान् ने अपने अन्तिम उपदेश मे तप के लिए आहार छोडने की बात कही है और निर्जरा के बारह उपायो में यह भी एक उपाय है। इससे योगगत द्रव्य विशुद्ध होता है अत द्रव्यलेश्या विशुद्ध होती है। द्रव्य-लेश्या मे विशुद्धि मे परिणामो की शुद्धि की पुष्टि होती है। प्रशस्त द्रव्य और भाव-लेश्या के कारण अशुद्ध कर्मो का उदय निरोध होता है। फलत कर्मो की निर्जरा होती है। दूसरी बात आहार की इच्छा के निरुन्धन का प्रयोगात्मक रूप अनशन तप है।

अनशन तप के विषय में दूसरा भ्रम यह है कि 'अनशन तप सहज साध्य होना चाहिये, प्रयत्न साध्य नही।' 'मैं आहार छोडूँ', 'तप करूँ'—यह भाव ही नही आना चाहिये। 'अपने ध्यान मे, साधना मे लीन होने पर जो सहज मे अन्नादि के खाने की प्रवृत्ति रुक जाती है—वही वास्तविक अनशन तप है।' पर यह कथन शास्त्र-सम्मत और युक्तिसगत नही है। यदि ऐसी बात होती तो, न तो शास्त्रो मे ऐसा चिन्तन करने का विधान ही होता कि—'मैं आज क्या तप करूँ' और न प्रत्याख्यान के पाठो का ही निर्माण होता। दूसरी बात, एक कार्य किसी के लिए सहजसाध्य होता है तो वही कार्य दूसरे के लिए प्रयत्न साध्य होता है। परन्तु उसके फल मे कोई अन्तर नहीं होता है। अतः किसी के लिए उस कार्य की सहज साध्यता अन्य के लिए प्रयत्न साध्यता मे विरोधी नहीं है और वस्तुत आराधना, साधना आदि-आदि शब्द ही सहजता के विरोधी हैं। साधना, आराधना मे तो प्रयत्न, यत्न या श्रम अवश्य होता है भले ही फिर वह अल्प हो या अधिक।

तीसरा भ्रम है—'उपवास मे आहार की अभिलाषा विद्यमान रहती हो तो वह निरर्थक है—उपवास नही है।' पर यह बात गलत है। आहार की अभिलाषा होते हुए भी उपवास हो सकता है और आहार की अभिलाषा न होते हुए भी तद्रूप स्थिति उपवास नहीं कही जा सकती। भोजन कर लेने के बाद मनुष्य मे आहार की इच्छा नहीं होती और देवो मे सैंकडो, हजारो वर्षो तक आहार की इच्छा नही होती। पर वह स्थिति उपवास संज्ञा से अभिहित नही हो सकती। अनशन तप के प्रारम्भिक काल मे कदाचित् अन्न की याद भी आ सकती है। पर अभ्यास हो जाने के बाद ऐसी स्थिति नही रहती और अन्न की स्मृति मात्र हो जाने से तप भग नही होता है।

उपसंहार

जैन शासन मे अनशन तप का बहुत महत्त्व है परन्तु फिर भी, इसके लिए जबर्दस्ती करने की बात कही भी नही कही गई है। यही कारण है कि नित्य एक भक्ताशनी को भी नित्य तप कर्मरत कहा है। भगवान् के मार्ग मे यथाशक्ति तप करने की बात कही गई है परन्तु शक्ति की अल्पता के बहाने अपने वीर्य-पुरुषार्थ को गोपन करने का भी निषेध किया है। अत इन बातो को ध्यान मे रखकर, अनशन तप की यथाशक्ति आराधना करने वाला साधक सिद्धि का वरण करता है। •

अभूतपूर्व तपस्या

श्री पारसमल डागा

जैन धर्म मे तप का वही स्थान और महत्त्व है जैसा देह मे हृदय का । जैन सस्कृति तप प्रधान है । तप श्रमण सस्कृति का जीवन और प्राण है । आचार्य शीलाक ने भी श्रमण शब्द की व्याख्या करते हुये कहा है 'श्राम्यति तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमण.' तपोमय जीवन अर्थात् जो निरन्तर श्रम और तप मे लवलीन रहता है । पीडा, कष्ट और दु.ख सहन करना ही श्रमण कहा जाता है । इस प्रकार तप, जीवन उत्कर्ष का प्रशस्त पथ है । जैन सस्कृति मे तप साधना अन्य सस्कृतियो से कठोर और भिन्न है । जैनाचार्यों ने तप के दो भेद किये हैं—बाह्य और आभ्यन्तर । व्रत, उपवास, रस त्याग काय क्लेश और प्रतिसलीनता ये छ बाह्य तप हैं । प्रायश्चित्त, वैयावृत्य स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग आभ्यन्तर तप माने जाते हैं । बाह्य तप शरीर सम्बन्धी नियम और उपनियमो विधिविधान से सयुक्त हैं । आभ्यन्तर तप हृदय के शुद्धिकरण के सरस साधन हैं ।

जैन धर्म मे ही नही वरन् विश्व के प्राय सब ही धर्मों ने तप को सुखी जीवन की आधारशिला कहा है । वैदिक धर्म के अधिष्ठाताओ ने तप के माहात्म्य का सबल शब्दो मे विवेचन करते हुए तपस्या को वेदो की जननी कहा है । तप ऋत और सत का जनक है । वह ब्रह्म प्राप्ति का अस्त्र है । जैनाचार्य भी तप को आत्मा का गुण मानते हैं । वह साध्य और साधन दोनो स्वीकार करते हैं । सृजनात्मक दृष्टि से तप आत्मोपलब्धि है । वह एक ऐसा अनूठा प्रयोग है जो आत्मा और परमात्मा की शृ खला को जोड़ता है ।

श्रीमती इचरज कु वर लुणावत की तपस्या यथार्थ मे उस शाश्वत सत्य का उद्घोष है कि तप से आत्मा निर्मल होती है—आत्मा निर्मल कब होती है—जब उसके साथ चिपका हुआ कर्मरूपी मल दूर हो जाता है—दर्शन की भाषा मे इसे निर्जरा कहते हैं । आज से ५८ वर्ष पूर्व श्रीमती लुणावत का जन्म बडू निवासी श्री प्रेमराज जी कोटेवा के यहा हुआ था । श्री कोटेवा स्वय भी एक धर्मपरायण निष्ठावान् श्रावक थे । आपकी माताजी भी क्रियानिष्ठ, धार्मिक वृत्ति की श्राविका थी । स्वाभाविक था–माता पिता के सस्कार सन्तान मे भी अवस्थित होते–जीवन की अरुण वेला के साथ पुत्री भी सत और साध्वियो के उपदेशामृत का पान करने लगी ।

११ वर्ष की आयु मे आपका विवाह स्व० श्री गुमानमल जी लुणावत के साथ हुआ । श्री गुमानमल जयपुर जैन समाज मे अपनी धार्मिक प्रवृत्तियो के लिये चिर-

परिचित थे। जैन आगमों में वर्णित श्रावक की दिन-चर्या उनका दिन भर का कार्य-क्रम था। जीवन में कुछ ऐसे भी क्षण आते हैं, जब मानव किकर्त्तव्यविमूट हो जाता है—लक्ष्य से भटकने भी लगता है। रोग शोक के कारण उनके जीवन में बड़ा व्यवधान उपस्थित हो गया—धार्मिक प्रवृत्तिया भी कुण्ठित हो गई और निदान एक ऐसा भी दिन आया जब श्री लुणावत अल्पायु में ही जीवन यात्रा समाप्त कर पीछे तीन पुत्र एक पुत्री को छोड सदा सर्वदा के लिए चिर निद्रा में सो गये। जीवन की क्षण भंगुरता और असारता ने श्रीमती लुणावत को झकझोर डाला और वे तभी से जीवन की सार्थकता की ओर अग्रसर हुई।

"जित जगत् केन मनोहियेन"। अर्थात् इस ससार को कौन जीत सकता है—वही जो अपने मन को जीत सकता है। लोग कहा करते हैं, धर्म क्या है? धर्म मनुष्य की एक भावना है—एक विचार है। हम जो कुछ सोचते हैं, वही बोलते हैं और वही करते हैं—अर्थात् विचार विशुद्धि अपेक्षित है। वाणी की पावनता और कर्म की पवित्रता इसकी उपलब्धि है—श्रीमती लुणावत का समग्र जीवन इसी उपलब्धि का पावन प्रसग है। आप के तीन पुत्र सर्वश्री महेन्द्र कुमार, वीरेन्द्र कुमार तथा देवेन्द्र कुमार एव पुत्री तथा पुत्रवधुयें भी आपके जीवन से पूर्ण प्रभावित होकर तपमय जीवन की दिशा में आगे आ रही हैं अठाइया, व्रत तथा मास खमण तपस्या के क्षेत्र में वे आपके चरण चिन्हो पर चल रही हैं।

श्रीमती इचरज कुवर एक शान्त प्रकृति की धर्मपरायण महिला हैं। संकट की घडियो में भी आप धर्मपथ का अनुशीलन दृढता के साथ करती हैं। आप इससे पूर्व एक दिन छोड एक दिन आहार करना, अठाइयां, मास खमण ४५, ५१ तथा ६१ दिवसीय अनशन तप का आयोजन कर चुकी हैं। ऐसा आभास होता है मानो तप श्रीमती लुणावत के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है।

जिन्होंने प्रत्याखान के सदर्भ में भी हृदय की निष्ठा, विश्वास और सत् सकल्प की दुरूहता को इस प्रकार प्रकट कर कि "मैं आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी महाराज के दर्शन करने के उपरात ही पारणा करूगी।" श्रीमती लुणावत का आत्मवल का प्रतीक है।

हम इस पावन अवसर पर श्रीमती लुणावत का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं जिन्होंने इस भौतिक युग मे, जहा जीवन का आकलन केवल मात्र अर्थ है, इस लम्बी अवधि की तपस्या का आयोजन कर जैन सस्कृति के सनातन सत्य को मुखरित किया है। मैं इस समारोह के माननीय मुख्य अतिथि श्री जगजीवनजी के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर इस समारोह की श्री वृद्धि मे अपना अपूर्व योगदान किया है।

विश्व शान्ति की आधारशिला : जैन धर्म

विमला कुमारी वैद्य, एम० ए०

ससार आज युद्ध की विभीपिका मे त्रस्त होकर एक ऐमे किनारे पर खडा है, जहाँ से वह कभी भी विध्वस के गर्त मे गिर सकता है। आज मानव-मानव के खून का प्यासा है। भौतिक रूप से मानव जितना समृद्ध हो रहा है उतना ही वह आध्यात्मिक रूप मे कमजोर भी हो रहा हैं। चिर सुख और शान्ति के मार्ग को क्षणिक सुख के प्रश्रय मे भुला बैठा है। भौतिकवाद के अत्यधिक विकास होने से पहले तो ससार की आँखें विज्ञान के चमत्कार के आगे चकाचौंध हो जाती है, किन्तु विश्व मे होने वाले महायुद्धो ने विज्ञान की चमक-दमक को ही समाप्त कर दिया। अणुबम प्रगतिशील विज्ञान का ही अभिशाप है। जिसने कुछ ही समय मे हजारों जापानियो को स्वाहा कर दिया। हमारे सामने हिरोशीमा और नागासाकी के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

हम, गत युद्धो के बुरे परिणामो से दूर भी हो नही पाये थे कि इससे पूर्व तृतीय महायुद्ध के बादल हमारे ऊपर मडराने लगे। भारत व पाकिस्तान की समस्या विश्व के सामने है। चीन जिसकी किसी समय हमसे दोस्ती थी, उसी ने हम पर आक्रमण कर दिया और हमारी जमीन भी हडप ली तथा समय-समय पर युद्ध की धमकियाँ भी देता रहा है। ससार मे कुछ ऐसे देश भी हैं जिन्होने राजनैतिक स्वार्थ के कारण भ्रातृत्व भावना को भूलकर सम्पूर्ण मानव जाति को, जो शान्ति से जीने की इच्छुक है, युद्ध की ज्वाला मे धकेल देना चाहते हैं। पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया, उसके परिणाम विश्व के सभी लोगो के समक्ष हैं। अमेरिका और वियतनाम, इजराइल, ईरान आदि देशो के युद्धो के परिणाम हम अभी देख ही चुके हैं। ये सब संसार को कभी भी मौत के मुँह में ढकेल सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि यदि जीवन की गाडी इसी तरह चलती रही तो यह जीवन-जीवन नही, मौत मे भी बढकर होगा। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ससार मे उत्पन्न हुयी परिस्थितियो और समस्याओं से व्यथित अन्त करण, विश्व-शान्ति नामक धर्म का द्वार खटखटाता है और कहता है कि हमे उच्च ज्ञान की

उतनी आवश्यकता नही, जितनी कि उसकी, जो कलह, विद्वेष, अशान्ति आदि मुसीबतो से बचाकर शान्ति और कल्याण का मार्ग बतावे। जैन धर्म ही साधन और साध्य है जिसकी आधार शिला प्रेम और शान्ति रही है। इतिहास को देखने पर मालूम होता है कि चन्द्रगुप्त और जैन नरेशो के शासनकाल मे प्रजा का जीवन सुखी, सम्पन्न एव पवित्र था। आज भी जो लोग इस वैज्ञानिक धर्म के प्रकाश मे जीवन निर्वाह करते है वे अन्य समाजो की अपेक्षा अपने को कही अधिक सुखी और शान्त अनुभव करते हैं।

आज विश्व के अधिकाश लोगो का जीवन स्वार्थमय बन गया है। प्रत्येक हृदय से यही आवाज निकलती है कि दुर्बल व्यक्तियो को हमेशा के लिये मृत्यु की गोद मे सो जाना चाहिये। सत्ताधीश दूसरो की दुर्बलता से लाभ उठाकर बडे-बडे देशो तक को हजम कर लेते हैं, जैसे व्याघ्र गाय को स्वाहा कर लेता है। विश्व के सम्मुख League of Nations (राष्ट्र सघ) की स्थापना हुयी, किन्तु वह शान्ति की ओर कुछ भी नही कर सका। इसके पश्चात् U N.O (सयुक्त राष्ट्र सघ) की स्थापना हुयी और वह शान्ति के लिये बराबर प्रयास कर रहा है। किन्तु कभी-कभी इसका प्रभाव भी नहीं पडता। कारण कूटनीतिज्ञ लोग अपने स्वार्थ के कारण इसकी उपेक्षा करते हैं। साराश यह है कि सत्ता और धन के बल पर सत्य का द्वार बन्द हो जाता है।

जैन धर्म हमे यही शिक्षा देता है कि 'जीओ और जीने दो'। साथ ही साथ यह भी बताता है कि यदि हम दूसरो के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे तो हमे भी शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा। यदि दूसरो के अधिकारो को छीनने का प्रयास करेंगे तो हमारा जीवन भी विपत्तियो से घिरा होगा। प्रकृति का यह नियम है कि 'As you will sow so shall you reap' जैसा बोओगे वैसा काटोगे।

आज की राजनीति की चाले बड़ी ही अजीब हैं। देशवासियो को चाहे खाने को दाना भी न मिले फिर भी विदेशो को लाखो टन गेहू व अन्न खाद्यान्न भेजा जाता है, जबकि वहाँ उन्हें जला दिया जाता है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि बाजार भाव घटने न पावे। आज जितने भी पूजीपति देश हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य धन संचय करना ही है। धन ही उनका परमात्मा है। महात्मा गाधी का कहना है कि "चाहे दुनिया कुछ भी कहे, लेकिन सत्य तो यही है कि धन न किसी का सगा रहा और न किसी का सगा रहेगा। फिर भी यदि वह धन की पूजा करता रहा तो उसका भविष्य अन्धकारमय हो जावेगा"। धन की पूजा के स्थान पर करुणा की आराधना होनी चाहिये। करुणा की छाया मे ही सभी जीव आनन्दित होते हैं।

पूजीपतियो के दिमाग मे यदि यह बात जम जाये तो पूजीवाद की समस्या शीघ्र ही सुलझ सकती है।

आज शोषण का वोलबाला है। 'Might is right', 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की नीति सभी स्थानो पर अपनायी जाती है। आज धनी निर्धनो का, मिल मालिक मजदूरो का शोषण करके ही प्रसन्न होते हैं। मानव के हृदय मे मानव के प्रति यदि दया की भावना जागृत हो जाये तो वह दिन भी दूर नहीं, जब विश्व मे शान्ति का झडा लहराने लगे।

जन-सख्या की जो वृद्धि हो रही है उसके समाधान के लिये वैज्ञानिको ने कई कृत्रिम उपाय निकाले हैं, किन्तु इनसे कुछ लाभ नही होने वाला है। माल्थस के सिद्धान्तानुसार यदि उत्पादन की वृद्धि ३ + ३ के अनुपात मे होती है तो जनसख्या की वृद्धि ३ × ३ के अनुपात मे हो रही है। जैन धर्म तो प्राचीन समय से ही इस समस्या को हल करने के लिये विषय भोगो पर अनासक्ति, आत्म-सयम एव ब्रह्मचर्यादि का सन्देश देता आ रहा है। यदि लोग इस पर अमल करें तो यह समस्या आसानी से हल हो सकती है।

जैन दर्शन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पचशील के सभी सिद्धान्त विश्व शान्ति के लिये आवश्यक हैं। जैन धर्म में प्रत्येक आत्मा को समान स्वभाव व धर्म वाला माना गया है। विश्व मे शान्ति की भावना जागृत करनी होगी, दूसरो के स्वार्थ को अपना स्वार्थ मानना होगा तभी विश्व मे शान्ति की लहर दौड सकती है। मानव, ससार में विश्व शान्ति की माँग कर रहा है, इसकी पूर्ति का एक ही समाधान है कि हम अपने जीवन मे जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्तो को—सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि को अपनावें। इसको हम विश्व धर्म की सज्ञा भी देते हैं।



करते हैं तेरा अभिनन्दन

श्री शशिकान्त झा, शास्त्री

हे देवि ! तुम्हारे इस तप पर, उल्लसित यहा का है कण-कण ।
उल्लास भरे मन मे हम सब, करते हैं तेरा अभिनन्दन ॥
घर-घर मे आज तेरी चर्चा, पद-पद मे जाती कथा कही ।
हर गली तथा जन-मानस मे, तू ही चर्चा का विषय रही ॥
तू तपस्विनी एव देवी, तू तेजपुञ्ज पुरुषार्थमयी ।
तू क्षमा रूप, तू शान्ति मूर्ति, तू शुचिरूपा और सौख्यमयी ॥१॥
अपने ही हाथो से तुमने, गढ डाला यह हीरक जीवन ।
आते हैं आज हजारो जन, जिस जीवन का करने दर्शन ॥
था कौन जानता तुमसे यह, नगरी बन जायेगी पावन ।
तुम अपनी ओर खीच लोगी, भौतिकवादी जन-जन का मन ॥२॥
तप करके भी तुम थकी नही, न हुआ खिन्न तेरा तन-मन ।
हम दर्शक थकते देख तुम्हे, लगता भारी तेरा क्षण-क्षण ॥
कुछ समझ नही पाते जन हैं, रक्षित कैसे तेरा जीवन ।
सचमुच मे वन्दनीय तुम हो, कर रहे हजारो तुम्हे नमन ॥३॥
इतिहास बनाने तुम आयी अध्यात्म-विजित कर चचल मन ।
थी धार्मिक श्रद्धा जिसे नही, कर दिया उन्हे भी परिवर्तन ॥
झुकते भक्तो के आगे हैं, प्रभु को देना पडता दर्शन ।
प्रत्यक्ष रूप यह दिखा दिया, गुरुदेव पधारे स्वय मदन ॥४॥
प्रभु महावीर की चर्या मे, निर्वाण शती पर यह अनशन ।
बीती की याद दिलाता है, होता अतीत मुखरित इस क्षण ॥
मानव-मन की कैसी महिमा, गरिमा एव जीवन दर्शन ।
तेरे इस तप ने दिखा दिया, क्यो सबमे श्रेष्ठ मनुज जीवन ॥५॥
हैं आज करोड़ो अन्न विकल, मरणोन्मुख जगती मे निर्धन ।
तेरे व्रत से ले सीख, सुखी कर सकते हैं अपना जीवन ॥
है आत्मा अमर, अमर मन बल, तप इसका है प्रत्यक्षकरण ।
है अद्भुत-खाद्य-समस्या हल, आए कृषि-मत्री कर चिन्तन ॥६॥
जिस शौर्य भाव से निज तप का, हे देवि ! किया तुमने रक्षण ।
लगभग यह अर्द्ध-वर्ष का क्षण, अनशन-ज्वाला को किए सहन ॥
तुम जैसी पूज्या से जयपुर का, धन्य आज है जन-गण-मन ।
हे महा वन्दनीये ! पूज्ये ! स्वीकार करो यह अभिनन्दन ॥७॥

तप का अभिनव कीर्तिमान

—शशिकान्त झा, शास्त्री

लगभग आधे वर्ष का अनशन तप करके इस नगर की अभिनन्दनीया श्रीमती ईचरज कुवर लुणावत ने आज के प्रबुद्ध भौतिकवादी जन-मानस को महान् आश्चर्य मे डाल दिया है। इतनी लम्बी तपस्या की बात सुनकर सब दातो तले अंगुली दबाते हैं। बीसवी सदी के इस तृतीय चरण मे, ऐसा तपश्चरण कही अन्यत्र हुआ हो, सुनने मे नही आता।

भारतीय सस्कृति मे तप का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है। यहा के सभी धर्म शास्त्रों ने तप की महिमा को एक स्वर से स्वीकार किया है और कहा भी है—"भव कोडी सचिय कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ" याने करोडो जन्म का सचित कर्म तप से क्षीण हो जाता है। मनु का भी कथन है

"यद्दुस्तर यद्दुराराप यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तत् तपसा साध्य, तपोहि दुरतिक्रमम्॥

तथा—"तपसा कल्मष हन्ति" अर्थात् कठिन से कठिन कर्म तप से सिद्ध होता है। और तप पाप का विनाश करता है। इसके साथ ही तप की दुष्करता बताते हुए भी कहा गया है कि—"असिधारा गमण चेव, दुक्कर चरिउ तवो" याने तपश्चरण तलवार की धार पर चलने के समान हैं।

इस तरह धर्म ग्रन्थो का कलेवर तप-महात्म्य मे पूर्ण पीन एव पुष्ट बना हुआ है। तप के अनेक भेदो मे प्रथम अनशन है। अनशन का अर्थ है आहार का त्याग तथा तप इच्छा निरोध का वाचक है। इच्छाए आकाश के समान अनन्त मानी गयी हैं। ससार के अन्दर उठने वाले समस्त अशान्ति, कलह, कोलाहल, द्वेष, वैर, हिंसा, कपट एव सकल जाल फरेबो के मूल मे इच्छाए ही कारण हैं। इसी इच्छा पूर्ति के पीछे जागतिक क्रान्तियो और लोमहर्षक भीषण युद्धो का इतिहास छिपा है। सुमेरु जैसा विशाल स्वर्ण पर्वत भी एक तुच्छ इच्छा वाले व्यक्ति के लिए पर्याप्त नही है। समस्त धन-धान्यो से भरी यह वसुन्धरा भी इच्छापूर्ति की दृष्टि मे थोडी है। ससार मे विविध हिंसा, परिग्रहो की होड, चोरी, झूठ एव अब्रह्म सेवन के कलुषित कर्म भी दानवी इच्छा की ही क्रीडा है।

तप के द्वारा य सारे दूषित भाव मन के भीतर ही दब जाते हैं। जैसे पानी से आग बुझ जाती है वैसे तप वारि इच्छारूपी अग्नि को ठढा कर देता है। इसके सेवन से मानसिक अशान्ति शान्ति मे पलट जाती है। तप की इन्ही विशेषताओ के कारण भारतीय जन-मानस मे तपस्वियो का महामहिम स्थान बना हुआ है। तपस्वी परिव्राटो के आगे सार्वभौम सम्राट भी नतमस्तक रहा है।

थोडी देर के लिए तपोपलब्ध धार्मिक लाभो को हम भुला भी दे फिर भी सद्यः लाभ दृष्टि से भी तप सर्वथा उत्तम है। तप के द्वारा न सिर्फ मानसिक शान्ति ही हमे प्राप्त होती बरन् शरीर को सुखाने वाली चिन्ता से भी छुटकारा मिल जाता है। तपस्वी के मानस मे किसी के प्रति भी वैर-विरोध नही रहता और तप मे बचे हुए अन्नो से भूखे और बेसहारो को सहारा मिल जाता है। निराहार तन मे विषय-विकार दूर हो जाते हैं। आधि, व्याधि और उपाधि इन त्रिविध तापो को मिटाने मे तप रामबाण की तरह अमोघ है। इस प्रकार अनशन रूपी तप स्वार्थ परमार्थ उभय दृष्टि से परम लाभप्रद है।

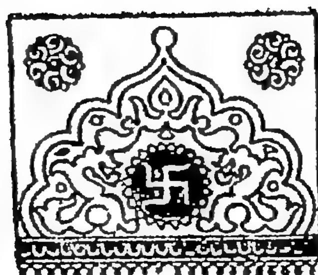
मगर तप का जैसा महात्म्य है, वैसा ही उसका पालन भी सहज और सरल नही है। बडे २ सग्रामो मे विजय पाने वाले सुभट भी आहार त्याग के मामले मे भीरु और पश्चाद्गामी हो जाते हैं। जैसे इजिन की गति के लिए कोयले या पैट्रोल की आवश्यकता होती है, वैसे जीवन की गाडी को चलाने के लिए भी आहार का ग्रहण परमावश्यक है। कहा भी गया है—"कलावन्नगत-प्राणा" याने कलियुग मे प्राण अन्न पर ही निर्भर है। एक दिन भी भूखा रहना लोगो के लिए भारी पडता है। किसी कवि ने भी कहा है—"भूखे भजन न होहि गोपाला।" भूखे को दिन मे तारे दिखाई देने लगते हैं। भूख के मारे सर्पिणी अपने बच्चे तक को खा जाती है।

ऐसी स्थिति मे १६५ (एक सौ पैंसठ) दिन तक सभी साधनो से सम्पन्न घर मे निराहार रहकर इस महिला शिरोमणि तपस्विनी ने जिस धीरता, वीरता, गभीरता और सहनशीलता का परिचय दिया है, निश्चय वह तप जगत मे एक अभिनव कीर्तिमान की तरह सदा श्लाघनीय बना रहेगा, परमात्मा इन्हे चिर-जीवन प्रदान करें।

तृतीय खण्ड

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ

एक दृष्टि में-



अहिंसा
सत्य
अचौर्य
ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह



भगवान
महावीर
ने कहा है—

- ऋजु—सरल हृदय में धर्म ठहरता है।
- इच्छाओ को रोकने से मोक्ष मिलता है।
- जो अपने विकारों को जीत लेता है वह समस्त संसार को जीत लेता है।

जीवन का सार

श्री शशिकान्त झा, शास्त्री

तप जीवन का सार है, तप ही धर्माधार है ।
निश्चय तप पर टिका हुआ, यह सारा संसार है ।।

तप की शान निराली है, महिमा अति मतवाली है ।
तप से ही मानस-वीणा का, झकृत होता तार है ।।

तप से जीवन वनता है, रोग, शोक सब टलता है ।
निर्मल मन से किया गया, तप सुख का दातार है ।।

था अतीत उज्ज्वल तप से, वर्तमान निर्मल तप से ।
तप-विहीन मानव-जीवन, सचमुच मे निस्सार है ।।

स्थानकवासी जैन परम्परा
(आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा लिखित, जैन आचार्य चरितावली के आधार पर)

ले० श्री सरदारमल-चोपड़ा

विश्व के इतिहास मे पन्द्रहवी तथा सोलहवी शताब्दी का विशिष्ट महत्व है। इन शताब्दियो मे जहां एक ओर राजनैतिक परिवर्तन, अराजकता तथा उथल-पुथल चल रही थी तो दूसरी ओर धार्मिक असहिष्णुता और अशान्ति से जन मानस त्रस्त था। यह वह काल था जब धार्मिक क्रान्ति की ज्वाला सर्वत्र प्रज्वलित हो रही थी। क्रिया-काण्डो से मुडकर जन मनोवृत्ति सन्तो की परम्परा की ओर प्रतिष्ठित हो रही थी। सुधारको का समुदाय, सर्व धर्म समभाव की भावना, अहिंसा की प्रतिष्ठा और गुणो की आराधना, पूजा अर्चन इस समय का वैचारिक अनूठापन था। अन्य देशो की तरह भारत भी उससे कैसे अछूता रह सकता था। कबीर, नानक, मीरा तथा तुलसी ने जहा लोक रजन के लिये नव साहित्य का सर्जन किया वहां उन्होंने धार्मिक आडम्बर, कर्म काण्ड का खुलकर विरोध भी किया। इस प्रकार सामाजिक एव धार्मिक नवचेतना का आविर्भाव हुआ। धर्म और राजनीतिक एकीकरण का जो श्रेय महात्मा गाधी को दिया जा रहा है, उसका सूत्र-पात इन्ही सतो की साधना का सुफल है। स्थानकवासी जैन परम्परा का विस्तार और विकास इस ही काल-क्रम का उपहार है। वीरवर लोका शाह के पुण्य प्रयत्नो का ही प्रतिफल है कि जैन समाज मे प्रचलित रूढिवादिता तथा जडता का नाश करके उन्होंने गुण-पूजा की प्रतिष्ठा की।

लौका शाह

अष्टोत्तर पनरह मे लोका आया,
दया धर्म ही सच्चा मत वतलाया।

प्रचलित किवदन्ती के अनुसार लोका शाह सवत् १५०८ मे प्रकट हुये। यहां प्रकट होने का आशय दीक्षित होने के काल-क्रम से प्रतीत होता है। वैसे धर्मप्राण लोका शाह के जन्म स्थान, समय और माता-पिता आदि के नाम के सम्बन्ध मे

भिन्न-भिन्न विचारधारायें है, किन्तु सर्वसम्मत निर्णय के अनुसार श्री लोंका शाह का जन्म १४७२ की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को माना जाता है। आप अरहटवा के सेठ हेमाभाई चौधरी के सुपुत्र थे। आप की माता का नाम गगाबाई था। सवत् १४८७ मे आपका विवाह सिरोही के प्रसिद्ध ओधवजी शाह की सुशील, विचक्षण और विदुषी पुत्री सुदर्शना के साथ हुआ। सिरोही और चन्द्रावती इन दोनों राज्यों के मध्य मे युद्धजन्य स्थिति के कारण अराजकता तथा व्यापारिक अस्त-व्यस्तता होने के कारण वे अहमदाबाद चले गये। अहमदाबाद मे आपने रत्न व्यवसाय प्रारम्भ किया। थोड़े ही समय मे आपने अपने श्रम और दूरदर्शिता से उक्त व्यवसाय मे अच्छी प्रगति और ख्याति अर्जित की। अहमदाबाद के तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद ने श्री लोंका शाह की कार्यकुशलता और विवेकशीलता से प्रभावित हो इन्हें खजाची बना लिया। किन्तु कुछ समय उपरान्त पिता-पुत्र के पारस्परिक मत-भेद से पीडित हो राजकीय सेवा से मुक्ति ले ली। पुत्र द्वारा पिता को विष देकर राज्य प्राप्त करने की घटना ने श्री लोंका शाह को संसार की स्वार्थपरता और क्षणभगुरता ने झकझोर डाला। ये ससार मे विरक्त हो जीवन की दूसरी दिशा की ओर उन्मुख हुये।

लोंका शाह प्रारम्भ से ही तत्त्व शोधक थे। शास्त्रों के गहन अध्ययन और भगवान् महावीर के प्ररूपणाओं का रहस्य भी समझने लगे थे। उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। सघ और समाज मे व्याप्त शिथिलतायें और आगमो में वर्णित आचरण का अभाव उन्हें दृष्टिगत होने लगा। यह देखकर आपको बडा आघात पहुँचा तथा आपने समाज के समक्ष सत्य को प्रकट करने का सकल्प लिया। तप, त्याग, सयम और साधना द्वारा आत्म-शुद्धि के शाश्वत सत्य को उद्घोषित किया। उन्होने दृढ-सकल्प करके शास्त्रीय उपदेश देना प्रारम्भ किया। तत्कालीन घोर विरोध और विषाक्त वातावरण मे भी श्री लोंका शाह ने सत्य का प्रचार तथा प्रसार किया। पुराने थोथे बाह्याडम्बरो से लोग तिलमिला उठे थे। आत्मार्थियो की आन्तरिक कामना थी कि शुद्ध सयम मात्र की विजय-वैजयन्ती पुन फहराई जावे। इस प्रकार लोंका शाह की विचारधारा का हृदय से स्वागत किया गया।

सवत् १६३९ मे तपागच्छीय यति श्री कान्तिविजयजी के लेखानुसार लोंका शाह ने सं १५०९ मे सुमति विजय जी से दीक्षा ग्रहण की।

लोंका शाह के उपदेशो से सौराष्ट्र के श्रावक जागृत हो गये। सेठ लखमसी भाणाजी, नूनजी आदि धर्मपरायण लोगो ने त्याग की ध्वजा फहराई और थोडे ही समय मे सैंकड़ों व्यक्ति आत्मार्थी साधक बन गये।

शृंखलाबद्ध इतिहास के अभाव मे आज समग्र जानकारी उपलब्ध नहीं हो रही है। फिर भी इतना तो द्रष्टव्य है कि लोंकागच्छ के साधु और साध्वियो ने

थोडे समय मे ही अपने विचारो के प्रसार और विस्तार मे कल्पनातीत सफलता प्राप्त की। पारस्परिक विचार-भेद तथा मान सम्मान की भावना की आकांक्षा तथा महत्त्व की स्पृहा के कारण उक्त चेतना अधिक काल तक अपने प्रारम्भिक स्वरूप में नहीं रह सकी। लौका शाह के एक सौ वर्षों के उपरान्त लौका गच्छ भेद-विभेद मे विभक्त हो गया। मुख्य रूप से तीन शाखायें इस परम्परा के प्रतिरूप बनी —

(१) गुजराती लौकाशाह, (२) नागोरी लौका शाह, (३) लाहोरी उत्तरावी लौकाशाह।

जीवाजी ऋषि का क्षेत्र मुख्यतया गुजरात रहा। अत उनकी पाट-परम्परा गुजराती लौकाशाह के नाम से विख्यात हुई। जीवाजो ऋषि के कई शिष्य थे। उनमे से संवत् १६१३ मे श्री वीर सिह जी को वडोदा मे पट्टधर की पदवी दी गई। दूसरी ओर बालापुर में कु वर जी ऋषि को पूज्य पद प्रदान किया गया। ये दो शाखायें मोटी पक्ष तथा नानी पक्ष के नाम से भी सम्बोधित की जाती हैं।

लौक गच्छ के दसवें पाट पर वर्ग्रागजी यति हुये। उनकी गादी सूरत मे थी। चारित्र बल क्षीण होने तथा क्रिया मे शिथिलता आने के कारण परिग्रह का प्रादुर्भाव होने लगा। परिणाम यह हुआ कि पूज्य लौका शाह द्वारा प्रज्वलित धर्म शिखा पुन. मन्द होने लगी। तब कुछ आत्मार्थी पुरुषो ने क्रिया उद्धार के द्वारा पुनः उस मलिनता और शैथिल्य को दूर करने का अभिग्रह लिया। उक्त क्रियोद्धारक सन्त मे श्री जीवराज जी, धर्म सिह जी, पूज्य लवजी ऋषि, धर्मदास जी तथा हरिदास जी के नाम आज भी बडे सम्मान के साथ लिये जाते है।

पूज्य श्री जीवराजजी महाराज सा०

पट्टावली के अनुसार जोवाजी और जीवराज नाम के दो महा सन्त हुये हैं। जीवराज जी महाराज की "जैन स्तुति पदावली" के अनुसार आपका काल-क्रम १७वी शताब्दी का पश्चिमार्द्ध माना जाता है तथा कुछ विचारक आप का जन्म श्रावण शुक्ला १४, स १५८१ के समीप मानते हैं। हमे इस गहराई मे नही जाना। उन्होंने आगमो के विषय में लौका शाह की बात का समर्थन किया। उन आचार्य श्री से सम्बन्धित ५ शाखाएं आज भी विद्यमान है—

(१) पूज्य श्री अमर सिह जी महाराज का सम्प्रदाय
(२) पूज्य श्री नानकराम जी महाराज का सम्प्रदाय
(३) पूज्य श्री स्वामीदास जी महाराज का सम्प्रदाय
(४) पूज्य श्री शीतलदास जी महाराज का सम्प्रदाय
(५) पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज का सम्प्रदाय

लौंका गच्छ के श्री पूज्य शिव जी म० के समय मे धर्म सिंह जी नाम के प्रसिद्ध व्याख्याता, विचारक तथा चिन्तक साधक हुए। आपने शास्त्रों पर टव्वा अंकित कर उन्होंने समाज का सर्वाधिक उपकार किया। आप इतने विलक्षण बुद्धि के क्रियानिष्ठ साधक थे कि १०००२ श्लोकों को १ दिन मे कण्ठाग्र कर लिया। पार्श्वचन्द्राचार्य के तुल्य आपने भी शास्त्रो पर बाल बोध अर्थ के टव्वे किये। आप द्वारा २७ सूत्रो पर टव्वे किये जाने का उल्लेख है (जैन आचार्य चरितावली पृष्ठ स० १३७)।

पूज्य लवजी ऋषि

सत्रहवी शताब्दी मे आप का जन्म सूरत के प्रसिद्ध श्रावक श्री वीर जी के यहा फूला बाई की कोख से हुआ। लव जी ऋषि के दीक्षा समय के बारे मे विविध विचारधारायें प्रचलित हैं किन्तु इतिहास के आधार पर संवत् १६९२ आपका दीक्षा-काल माना जाता है।

आपके सम्प्रदाय चार शाखाओ मे विद्यमान हैं :—

(१) हरदास जी के पदानुसारी पूज्य श्री अमरसिंह जी म० सा० का समुदाय।

(२) पूज्य श्री कान जी ऋषि का समुदाय।

(३) पूज्य श्री तारा ऋषि जी म० सा० का समुदाय

(४) पूज्य श्री राम रतन जी।

इनकी आचार्य परम्परा क्रम से बताई जाती है।

प्रथम समुदाय

(१) पूज्य श्री लवजी ऋषि
(२) पूज्य श्री सोमजी ऋषि
(३) पूज्य हरिदास जी
(४) पूज्य श्री वृन्दावन जी
(५) पूज्य भगवानदास जी
(६) पूज्य श्री मलूकचद जी
(७) पूज्य श्री महासिंह जी
(८) पूज्य श्री कुशलचदजी
(९) पूज्य श्री छजमल जी
(१०) पूज्य रामलाल जी
(११) पूज्य श्री अमरसिंह जी
(१२) पूज्य रामबक्स जी
(१३) पूज्य श्री मोतीराम जी
(१४) पूज्य श्री सोहनलाल जी
(१५) पूज्य श्री काशीराम जी
(१६) पूज्य श्री आत्माराम जी म०

द्वितीय समुदाय

(१) पूज्य लवजी ऋषि
(२) पूज्य श्री सोमजी ऋषि
(३) पूज्य कान जी ऋषि
(४) पूज्य ताराचद जी

(५) पूज्य काला जी ऋषि
(६) पूज्य वक्सु ऋषि
(७) पूज्य धन्नाजी
(८) पूज्य तिलोक ऋषि
(९) मुनि श्री दौलत
(१०) पूज्य श्री अमोलख जी
(११) देव जी ऋषि म०
(१२) पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म०

तीसरे समुदाय की आचार्य परम्परा मे १३ पाट पर श्री छगनलाल जी महाराज सा० जो खम्भात्त समुदाय के नाम से गुजरात मे विख्यात हैं।

चौथे समुदाय मे रामरतन जी महाराज की सम्प्रदाय है जो मालवा मे हैं।

धर्मोद्धारक श्री हरजी महाराज

श्री हरजी महाराज कु वर जी के गच्छ से निकल कर धर्मोद्धार करने वाले ६ महापुरुषो मे से एक हैं जिनका समय १६८६ के उपरान्त होना प्रतीत होता है। हर जी महाराज से भी कुछ मुख्य शाखाए प्रकट हुई, जो कोटा हैं। और पूज्य श्री हुक्मचद जी महाराज की समुदाय के नाम से परिचित हैं।

कोटा समुदाय आचार्य परम्परा—इस समुदाय के १३वें पाट पर पूज्य श्री गणेशमलजी महाराज साहब खारीवाले—

इसी की दूसरी शाखा मे १३वें पट्टधर श्री हरकचन्दजी महाराज साहब—आज कोई साधक नहीं हैं।

द्वितीय शाखा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० साहब

आचार्य परम्परा —

(१) पूज्य श्री हरजी ऋषि
(२) ,, श्री गोदाजी महाराज साहब
(३) ,, फरसुरामजी
(४) ,, लोकमलजी
(५) ,, मायारामजी
(६) ,, दौलतरामजी
(७) ,, लालचन्दजी
(८) ,, हुक्मीचन्दजी जिनके नाम से सम्प्रदाय चलता है।
(९) पूज्य शिवलालजी
(१०) ,, उदयसागरजी
(११) ,, चोथमलजी
(१२) श्री लालजी
(१३) जवाहरलालजी
(१४) श्री गणेशीलालजी
(१५) नानालालजी

(ब)

(१२) पूज्य श्री लालजी महाराज साहब
(१३) पूज्य मन्नालालजी

(१४) खूवचन्दजी

(१५) छगनलालजी । वर्तमान मे स्थति २, किस्तूरचन्दजी

पंचम धर्मोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज

आपका जन्म अहमदावाद के समीप सरखेज मे हुआ था । आपका जन्म काल १७०१ विक्रमी माना जाता है । आषाढ शुक्ला ५ सवत् १७५९ को ८ दिन के सथारे के पश्चात् स्वर्गवासी हो गये । आपके बाईस समुदाय के नामक मुनि ।

समुदाय

(१) लोमडी (२) जोडल (३) वरवाला (४) वोराद

(५) सायला (६) कच्छ ।

पूज्य श्री धन्नाजी महाराज के शिष्यो मे श्री धन्नाजी महाराज जी प्रमुख और प्रधान थे । आपका जन्म मारवाड के सोचोर ग्राम मे सवत् १७२७ मे हुआ था । आपके पिता श्री मूथा वाधा एक धर्मनिष्ठ श्रावक थे। आपने सवत् १७२७ मे धर्मदासजी महाराज के सान्निध्य मे भगवती दीक्षा ली । आप वडे प्रखर बुद्धि के तत्वज्ञानी तपस्वी, विचारक और चिन्तक साधक थे । आपके प्रमुख शिष्य मूधरजी महाराज एक प्रभावशाली आचार्य थे, जिनके नाम पर यह परम्परा आज भी विद्यमान है—

(१) पूज्य श्री धन्नाजी महाराज साहव
(२) „ श्री मूधरजी „ „
(३) „ श्री रघुनाथजी „ „
(४) „ श्री टोडरमलजी „
(५) „ दीपचन्दजी „ „
(६) „ भैरोदासजी „ „
(७) „ श्री जेतसीजी „ „
(८) „ श्री फौजमलजी „
(९) „ श्री सन्तोष चन्दजी „
(१०) „ श्री मोतीलालजी
(११) „ श्री रूपचन्दजी

उपशाखायें

चौथे पूज्य श्री टोडरमलजी महाराज के द्वितीय शिष्ट इन्द्रमलजी के वाद दूसरे पाट से दो प्रतिशाखायें निकली, जिनमे महान् तपस्वी साधक श्री मानमलजी और बुधमलजी हुए । बुधमलजी महाराज साहव के शिष्य मरुधर केसरी मिश्रीमलजी महाराज साहव हैं ।

पूज्य श्री जैतसीजी महाराज की परम्परा

इस परम्परा मे उम्मेदमलजी महाराज साहब सुलतानमलजी महाराज साहब चतुर्भुज जी महाराज साहब हुए हैं।

पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य जयमल्लजी महाराज	(२) पूज्य रायचन्दजी महाराज
(३) ,, आसकरणजी ,,	(४) ,, सवलदासजी ,,
(५) ,, हीराचन्दजी ,,	(६) ,, कस्तूरचन्दजी ,,
(७) ,, श्री भीकमजी ,,	(८) ,, श्री कानमलजी ,,

पूज्य कानमलजी महाराज के पश्चात् वर्षों तक आचार्य पद रिक्त रहा। उस समय पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज साहब के शिष्य श्री हजारीमलजी महाराज साहब और श्री नथमलजी महाराज के चोथमलजी महाराज साहब तथा मगनमलजी महाराज साहब के श्री रावतमलजी महाराज तीन सघ की कार्य व्यवस्था का सचालन निर्वाह करते थे। कालान्तर मे पूज्य श्री हजारीमलजी महाराज साहब के प्रमुख शिष्य प० श्री मिश्रीमलजी मधुकर आचार्य पद पर आसीन हुए। सवत् २००९ के सादडी के अखिल भारतीय स्थानकवासी मुनियो के वृहद् सम्मेलन मे श्री सघ का विलय होने के उपरान्त मुनि श्री ने आचार्य पद का परित्याग करके अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया। आज सघ की व्यवस्था की देख-रेख मुनि श्री ब्रजलालजी महाराज साहब तथा जीतमलजी महाराज कर रहे हैं।

पूज्य श्री कुशलजी महाराज की समुदाय
श्री रतनचन्द्रजी महाराज की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य पाद श्री कुशलजी महाराज साहब
(२) ,, श्री गुमानचन्दजी महाराज साहब
(३) ,, श्री दुर्गादासजी
(४) ,, आचार्य श्री रतनचन्द्रजी महाराज एक महान् सत और क्रिया उद्धारक महा मानव थे–आपके नाम पर समुदाय प्रारम्भ हुआ।
(५) ,, श्री हमीरमलजी महाराज साहब
(६) ,, श्री कजोडीमलजी महाराज साहब
(७) ,, श्री विनयचन्द्रजी महाराज साहब
(८) ,, श्री शोभाचन्दजी महाराज साहब
(९) ,, श्री हस्तीमलजी महाराज साहब

पूज्य श्री चोथमलजी महाराज साहव

(१) पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज साहव
(२) ,, श्री दीपचन्द्रजी
(३) ,, श्री भैरुदासजी
(४) ,, श्री चोथमलजी (आपके नाम से सम्प्रदाय प्रचलित है)

श्री छोटा पृथ्वीराजजी महाराज की समुदाय : इस सम्प्रदाय में अब तक १३२ आचार्य हो चुके हैं आज भी श्री अम्बालालजी महाराज साहव इसी समुदाय की प्राण प्रतिष्ठा मे सलग्न हैं।

श्री मनोहर दास जी महाराज की समुदाय

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
(२) मनोहरदासजी
(३) भागचन्दजी
(४) श्री शीलारामजी
(५) पूज्य श्री रामदयालजी, श्री लूणकरणजी, रामसुखदासजी, ख्यालीराम जी, मगलसैनजी, मोतीरामजी, पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी और कवि श्री उपाध्याय अमरचन्द्रजी महाराज साहव।

कवि श्री आज समग्र जैन समाज मे महान् राष्ट्र संत, चिन्तक, विचन्तक तथा आगम साहित्य के प्रगाढ पडित हैं—काव्यकार, साहित्यकार तथा समीक्षक तीनो ही रूपो मे आप साहित्य की विविध विधाओं का सृजन कर रहे हैं।

श्रीरामचन्द्रजी महाराज की समुदाय

चरित्र नायक श्रीरामचन्द्रजी गोमाइजी के शिष्य थे। आप प्रात. स्मरणीय आचार्य श्री धर्मदास से प्रभावित होकर जीवन के सौरभमय वसन्त मे २७ वर्ष की आयु मे सवत् १७५४ मे इतिहास प्रसिद्ध नगरी धार मे दीक्षा ग्रहण की। आप तत्व-वेता और आगम साहित्य के प्रगाढ पडित थे। आपकी आचार्य परम्परा निम्न प्रकार है :—

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज साहव
(२) ,, श्री रामचन्द्रजी महाराज साहव
(३) ,, श्री माणकचन्दजी महाराज साहव
(४) श्री जसराजजी महाराज साहव
(५) श्री पृथ्वीचदजी महाराज साहव

(६) श्री अमरचद्रजी महाराज साहब बडे
(७) श्री अमरचदजी छोटे
(८) श्री केशवजी
(९) भीखमसिंहजी
(१०) श्री नन्दलालजी
(११) श्री माधव मुनि जी
(१२) श्री चम्पालालजी
(१३) श्री वयोवृद्ध श्री ताराचद्रजी महाराज साहब
(१४) श्री किशनलालजी

वर्तमान मे मधुर व्याख्याता, प्रभावशाली प्रवचनकार पूज्य श्री सोभागमलजी महाराज साहब इस समुदाय की कीर्ति कोमुदी सर्वत्र छिटक रहे हैं ।

छठा समुदाय

प्रस्तुत समुदाय परम पूज्य आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज के नाम से विख्यात है । इस समुदाय के प्रवर्तक महामुनि ताराचन्दजी महाराज आज भी अपनी विद्वतापूर्ण आभा से समग्र-समाज को आलोकित कर रहे हैं—इस ही समुदाय का दूसरा अ ग पूज्य श्री रामरतनजी महाराज की समुदाय से तथा अन्य श्री ज्ञानचन्द्रजी महाराज साहब के समुदाय के नाम मे विख्यात है । जिनमे मुनि श्री मोतीलालजी, श्री रतनचन्द्रजी, श्री सिरेमलजी, श्री पूरणमलजी तथा श्री इन्दुमलजी आदि बहुश्रुत सन्त हुए हैं । आज भी पडित प्रवर बहुश्रुत श्री समर्थमलजी महाराज इस समुदाय की मान्यता के शीर्षस्थ सन्त हैं ।

इस प्रकार समस्त स्थानकवासी समाज अपने अनेको सम्प्रदायो और समुदायो मे विभक्त है किन्तु विभिन्नताओ मे भी एकरूपता के दर्शन होते हैं जैन साहित्य के निर्माण मे उनका योगदान अपने ढग का अनूठा और आश्चर्य मे डालने वाला है ।

साधु मार्गियो की मान्यतायें

(१) आरम्भ एव आडम्बर की प्रवृति का विरोध
(२) बत्तीस आगम
(३) सदोरक मुखवस्त्रिका
(४) एव उत्कट चारित्राराधना

श्री जीवनराजजी महाराज साहब ने आगमो के विषय मे लौकाशाह की बातो का ही अनुशीलन किया परन्तु आवश्यक सूत्र को प्रामाणिक मानकर ४१ आगम के स्थान पर बत्तीस आगम माने । उन्होने मूल आगमो को ही केन्द्र

स्वीकृत किया । आज भी समग्र स्थानकवासी समाज उक्त परम्परा का अनुपालना करता है । स्थानकवासी समाज निम्नलिखित आगमो को प्रमाण भूत मानता है :—

(११) अंग सूत्र —आचाराग, सूत्र कृतोग, स्थानाग, समवायोग, व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवता) ज्ञाना धर्म कथा, उपासक दशा, अतकृत दशाग अनुत्तरोपपातक, प्रश्न व्याकरण, विपाक-सूत्रा

(१२) उपाग सूत्र :—ओपाजिक अववाई, राय प्रसेंणी, जीवा मिगम, प्रज्ञापना, सूर्य प्रज्ञाप्ति, जम्बू द्वीप प्रज्ञाप्ति, चन्द्र प्रज्ञाप्ति, निश्यावापका, कल्पवतसिका, पुस्पिका, पुष्पचूविवा वहितदशा ।

(४) मूल सूत्र —दशवे कालिक उत्तराध्ययन, नदी, अनुयोग द्वार

(४) छद सूत्र —वृहत्कल्प, व्यवहार, निशीघ, दशस्श्रुतस्कवु

आवश्यक सूत्र :—इन प्राचीन शास्त्रो मे जैन परम्परा की दृष्टि ने आचार, उपदेश, दर्शन, भूगोल, खगोल आदि का आद्योपान्त वर्णन है ।

आचार की दृष्टि से :—आचाराग, दशवैकालिक, आदि उपदेशात्मक उत्तराध्ययन आदि ।



चिन्तन की दिशा में

—श्री नेमीचन्द वैद

भगवान् महावीर की २५सौवी शताब्दी की पावन वेला मे, आइये जिन मूल्यो को महावीर ने प्रतिष्ठापित किया था उन पर थोडा चिन्तन करें और सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये अपने चिन्तन को आगे बढावें। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था, प्रजातान्त्रिक सामाजिक चेतना,शोषण-विमुक्त समाज की सरचना मे आज भी भगवान् महावीर के तत्त्व-चिन्तन का उतना ही मूल्य और महत्त्व है।

भगवान् महावीर का 'जीओ और जीने दो' का पावन सन्देश भारतीय सस्कृति को सतत आन्दोलित करता रहा है—आज के स्वार्थपरायण विचारो मे कहा तक हम उसे स्थान दे पाये है—यह एक विचारणीय प्रश्न है।

मनुष्य समाज मे अकेला नही जीता—उसके साथ उसका परिवार, समाज और सघ भी होता है—वह सूखे पेड के सदृश निरपेक्ष और निश्चेष्ट रहकर कैसे जीवन यापन कर सकता है ? हमारे मन मे पास पडौस की घटनाओ की प्रतिक्रियाए भी होती हैं—अभावो से जूझता हुआ सामान्य जन आज की विषम परिस्थितियो मे अपने धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक दायित्व को कैसे निभा पा रहा है ? यह एक विचारणीय तथ्य है, जिसका समाधान करना भगवान् महावीर के प्रति सच्चा अनुराग होगा।

हमारा समस्त सामाजिक वातावरण इतना दूषित क्यो हो रहा है ? क्या हमने इस दिशा मे कभी कोई मनन या चिन्तन किया है ? और यदि किया भी है तो क्या इसका निराकरण किया है ? तथा उसके पहल के लिये हमारे प्रयास और प्रयत्न कितने फलीभूत हुये हैं ? गहराई से सोचने का कष्ट करें तो प्रतीत होगा कि जो भी निश्चित निष्कर्ष यदि हमने निकाले हैं, वे सब हमारी पसन्दगी और नापसन्दगी के नमूने हैं—परिणाम हमारे सामने है—हमारा सामाजिक ढाचा केवल बाह्य-मात्र है। इसकी जडें खोखली हो चुकी हैं—वह जर्जर और जडहीन है। यदि समय रहते हमने अपने कार्य कलापो पर विचार और निश्चय नही किया तो हम सामाजिक चेतना नही ला सकेंगे। चन्द सम्पन्न परिवारो के समूह को समाज की सज्ञा नही दी जा सकती है—वे समाज का सच्चा स्वरूप भी नही बना सकेंगे। समाज मे चेतना लानी ही होगी,

तभी हम और हमारा समाज अपने लिये, समाज के लिये, राष्ट्र के लिये धार्मिक, भौतिक एवं सास्कृतिक क्षेत्र मे आगे बढ सकेंगे। यहा कवि सेरस के शब्दो का स्मरण हो आता है।

"समय कह रहा बडे वेगसे, है यह मानवता का नारा।
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार हमारा" ॥

सच तो यह है कि समाज एक-एक व्यक्ति के योगदान का प्रतिफल है। उसमे सजीवता और चेतना लानी है तो हमे अपने धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सब क्षेत्रो में गंभीरता से सोचकर सही समाधान ढूढना पडेगा तभी हम सही अर्थ मे महावीर के तत्त्व-ज्ञान के ग्रहण करने के अधिकारी होंगे। अपने को पहचानने की आवश्यकता है, सिर्फ आध्यात्मिक जीवन के लिये नही अपितु जीवन के प्रत्येक पहलू पर—भले ही वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक—इस परिवर्तन और परिवर्द्धन के युग मे न्यायपूर्ण, युक्ति सगत समयोचित कार्य पद्धति अपनानी होगी तभी हम और हमारा समाज परिवर्तन की शृंखला मे आगे बढ सकेंगे। यह कार्य सहज और सरल तो नही है—मगर समय ने जो चुनौती दी है—बिना आवेश और आवेग लाये उसे स्वीकार करना होगा—समाज की एक अवधि से चली आ रही अन्ध परम्पराओ और रूढियो से सत्रस्त मानव को आत्मसात् करके चलना पडेगा—अब अधिक समय तक उसे आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता—हमें समाज के प्रति अपने सम्पूर्ण दायित्व के निर्वाहन के लिये उसकी वस्तु स्थिति पर सचाई से सोचकर उसका समुचित हल निकालना होगा।

भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव को पावन घडियो मे अपने कर्तव्यों को सही अर्थ मे अमली जामा पहनाइये—स्वय जीवित रहने और अन्यो को जीवित रखने की कल्पना को मूर्तरूप दीजिये—तभी हम भगवान् वीर द्वारा प्रतिष्ठापित मूल्यों को स्थापित करने मे सफल होंगे। सुदृढ बुनियादी भूमिका भी निभा पावेंगे—आइये इस भूमिका को तैयार करने तथा योजना को क्रियान्वित करने का साहस और संकल्प-शक्ति को जागृत करने का व्रत लें।

आर्थिक विषमतायें सामाजिक विषमताओ का मूलाधार होती हैं—अर्थ-व्यवस्था को ठोस बनाने पर ही सामाजिक व्यवस्था सुदृढ होने की कल्पना की जा सकती है—क्षमा करें, यदि समाज आर्थिक अन्तरभेद को दूर करने की दिशा मे ठोस कदम नहीं उठाये तो स्तब्ध करने वाला विस्फोट होगा—जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती—उस समय हमारी मनोदिशा कैसी होगी ?

भारतीय संस्कृति की गौरवमय परम्परायें जो हमे विरासत में मिली हैं, उन पर हमारा उत्तरदायी तबका देश काल की परिस्थितियो और सामाजिक स्थिति

भगवान् महावीर के जीवन का तलस्पर्शी अध्ययन करने पर नि सकोच कहा जा सकता है कि वे तपोविज्ञान के अद्वितीय आचार्य थे। उन्होने अपने समय मे प्रचलित देहदमनरूप वहिर्मुख तप का आन्तरिक साधना के साथ सामजस्य स्थापित किया और उसे आन्तरिक एव व्यापक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार वे तप साधना के महान् सस्कर्ता और साथ ही पुरस्कर्ता भी हुए। उनकी अनेक बहुमूल्य देनो मे तप विषयक देन भी कम महत्त्व की नही है।

जैनागमो की तरह बौद्ध वाड् मय मे भी अनेक स्थलो पर महावीर के शिष्यों के लिये 'निगठ' के साथ 'तपस्सी' 'दिग्घ तपस्सी' विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् महावीर स्वय कितने उग्र तपस्वी रहे होगे। अनुत्तरौपपातिक, अन्तकृत् दशा, भगवती आदि आगमो मे महावीर के शिष्यो और शिष्याओ का वर्णन है। उन्होने रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली लघुसिहनिष्क्रीडित, भिक्षुप्रतिमा, लघु सर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, भद्रोत्तर प्रतिमा, आयविल वर्धमान, गुणरत्न सवत्सर, चन्द्र प्रतिमा, सलेखना आदि, महान् तप करके देह को जर्जरित बनाया था। 'तवसूरा अणगारा' अनगार तप मे शूर होते हैं, यह जैन परम्परा का प्रसिद्ध वाक्य है। जैन श्रमण के लिए जहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्पन्न विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ उसे तपसम्पन्न भी कहा गया है।

तप जीवनोत्थान का प्रशस्त पथ है। तप की उत्कृष्ट आराधना-साधना से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है। सभी तीर्थंकरो ने अपने पूर्वभवो मे तप की साधना की। श्रमण-भगवान् श्री महावीर के जीव ने 'नन्दन' के भव मे एक लक्ष वर्ष तक निरन्तर मास खमण की तपस्या की। उन मास खमणो की सख्या ग्यारह लाख साठ हजार थी।

वैदिक सस्कृति ने भी साधक के लिए तप की साधना आवश्यक माना है। योग दर्शन ने तप को क्रिया-योग मे स्थान दिया है। उपनिषद्, गीता और मनुस्मृति मे भी तप और स्वाध्याय पर बल दिया गया है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक सस्कृति की तप साधना मे और जैन सस्कृति की तप साधना मे महान् अन्तर है।

जैन-दर्शन मे तप के दो प्रकार बताये हैं। बाह्य तप मे शरीर सम्बन्धी सभी साधन नियम समा जाते हैं और आभ्यन्तर तप मे हृदय को विशुद्ध बनाने वाले आचारो का समावेश हो जाता है। अनशन और ध्यान दोनो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत क्रम मे किया गया है। इस क्रम मे न तो केवल कष्ट सहन का विधान है और न कष्ट से पलायन कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न ही है। साधक के लिये सहिष्णुता और एकाग्रता दोनो अपेक्षित हैं। दोनो का सुमेल इस साधना क्रम मे है।

पर अन्य परम्पराओ मे ऐसा सुनियोजित क्रम नही है। अन्य परम्पराओ ने जहाँ केवल काय क्लेश और देह-दमन को महत्त्व दिया है वहा जैन परम्परा ने काय-क्लेश और देह-दमन के साथ ही आभ्यन्तर तप को भी महत्त्व दिया है। जैन सस्कृति का यह वज्र आघोष रहा है कि वाह्य तप के साथ यदि आभ्यन्तर तप का मेल नही है तो वह वाह्य तप मिथ्या है। धन्य अनगार की तरह ही तामली तापस और पूरण तापस ने उग्र तप किया था, किन्तु आभ्यन्तर तप के अभाव मे उनके विपुल तप को भगवान् महावीर ने अज्ञान तप कहा है। करोडो वर्षो तक अज्ञान तप करने पर अज्ञानी जितने कर्मो को नष्ट कर पाता है। उतने कर्मों को ज्ञानी कुछ ही समय मे नष्ट कर देता है। एतदर्थ ही साधक के लिये वाह्य तप करने के पूर्व आगमो का अध्ययन करना आवश्यक माना गया है। वाह्य तप क्रिया योग का प्रतीक है और आभ्यन्तर तप ज्ञानयोग का। ज्ञान और क्रिया ही मोक्ष के मार्ग हैं।

जैन सस्कृति ने तप का मुख्य उद्देश्य आत्माभ्युदय स्वीकार किया है। आचार्य जिनदास गणी महत्तर के शब्दो मे, "तप वह है जो अष्ट प्रकार की कर्म ग्रन्थियों को तपाता है। उन्हें भस्म करता है। भगवान् महावीर ने तप का फल व्युदान वताया है। व्युदान का अर्थ है सचित कर्ममल को साफ कर देना।"

एक आचार्य ने तप का अर्थ 'इच्छाओ को रोकना' किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है जैसे सदोष स्वर्ण प्रदीप्त अग्नि द्वारा शुद्ध होता है वैसे ही तप से आत्मा विशुद्ध होता है। वाह्य और आभ्यन्तर तपस्याग्नि के प्रज्वलित होने पर यमी दुर्जर कर्मों को तत्क्षण भस्म कर देता है। उत्तराध्ययन मे वताया है कि कोटि भवो के सचित कर्म तप द्वारा जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं। आचार्य श्री शय्यभव ने वताया कि (१) इहलोक सम्बन्धी लाभ के निमित्त तप नही करना चाहिए। (२) परलोक सम्बन्धी अभ्युदय के निमित्त तप नहीं करना चाहिए। (३) कीर्ति, वर्ण (लोक-व्यापी यश) शब्द (लोक प्रसिद्धि) और श्लोक (स्थानीय प्रशसा) के लिए तप नही करना चाहिए। निर्जरा के अतिरिक्त किसी भी उद्देश्य से तप नही करना चाहिए।

आचार्य अकलक देव कहते हैं—जैसे किसान को खेती से अभीष्ट धान्य के साथ-साथ पयाल भी मिलता है उसी तरह तप-क्रिया का प्रधान प्रयोजन कर्मक्षय ही है। अभ्युदय की प्राप्ति तो पयाल की तरह आनुषगिक है।

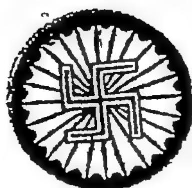
तप स्वरूपत एक है, किन्तु तपस्वी की भावना के भेद के कारण उसे सकाम और निष्काम, इन दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं। लोकेषणा और लौकिक ऋद्धि-सिद्धि के उद्देश्य से किए जाने वाला तप सकाम तप कहलाता है और आत्म-उत्थान के लिए या कर्म निर्जरा के लिए जो तप किया जाता है वह निष्काम तप है।

गांधीजी ने कहा है—"तप से जीवन निखरता है, मन मँजता है और काया कचनमय होती है।" काया के कचनमय हो जाने का आशय यही है कि तप से शुष्क शरीर मे एक अनूठा तपस्तेज दमक उठता है। तप एक प्रकार से शुद्ध किया हुआ रसायन है। कहा जाता है कि आज के वैज्ञानिको ने 'वायोकेमिस्ट' औषधियो की शोध की है। उनका मन्तव्य है कि शरीर मे वारह प्रकार के तत्त्व होते हैं। उन तत्त्वो मे से किसी एक तत्त्व की न्यूनता होने से शरीर रुग्ण होता है। वारह प्रकार के क्षार तत्त्वो से रोगो को नष्ट कर शरीर को पूर्ण स्वस्थ और मस्त बनाया जा सकता है। तप के जो वारह प्रकार हैं वे 'वायो केमिस्ट' औषधियो के समान हैं। इन तपो का शरीर के किस तत्त्व पर कैसा प्रभाव पडता है यह अनुसधान का विषय है, तथापि यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इनके आचरण से कर्म रूपी रोग नष्ट होते हैं और आत्मा पूर्ण स्वस्थ होती है।

तप श्रमण-संस्कृति की आत्मा है, तप और श्रमण सस्कृति के द्वैत की मान्यता को मैं मानस की सिकुडन मानता हू। तप सयम की पौध का फलना-फूलना श्रमण-सस्कृति का विकास है।

धर्मानुरागिणी दीर्घतपस्विनी सुश्राविका इचरज कु वरजी लूणावत ने भगवान् महावीर के पश्चात् सुदीर्घ तपस्या का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इतना दीर्घ तप करना वस्तुत अनूठा है, अद्भुत है। भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष मे इस वहिन ने वहुत ही सुन्दर व महान् श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है।

वहिन की तपस्या के उपलक्ष मे स्मारिका प्रकाशित करने का सुन्दर आयोजन कर तप का जो अनुमोदन किया जा रहा है वह स्तुत्य है।



महामानव महावीर

पाकर किसकी चमक चन्द्रमा चमक रहा है ?
किसकी लेकर दीप्ति दिवाकर दमक रहा है ?
किसका सौरभ व्याप्त सुमन-गण मे है प्यारा ?
किसकी आभा से आलोकित है जग सारा ?

अभिशापो के बीच कौन वरदान बना था ?
कौन प्रलय मे प्राण बना था, त्राण बना था ?
कौन महामानव था जो भू-पर था आया ?
किसने मानवता का जग को मूल्य बताया ?

अवगणितों को किसने अपने गले लगाया ?
समता का सगीत सुखद था किसने गाया ?
संयम की साकार मूर्ति किसने दिखलाई ?
तपस्तेज की महिमा थी किसने बतलाई ?

महावीर जय ! जगद्वन्द्य त्रिशला के नन्दन !
ज्ञातपुत्र ! केसरी-अक ! जन-जन-मन-रंजन !
जय वर्द्धमान ! जिनदेव ! लोक के अनुपम त्राता !
हे सन्मार्ग-प्रदीप ! विश्व के भाग्यविधाता !



जैन संस्कृति और तप

(महासती श्री कौशल्याजी म० सा०)

सस्कृति का स्रोत ऐसे सरिता प्रवाह तुल्य है जो अपने प्रभव स्थान से अन्त तक अनेको छोटे बडे जल स्रोतो से परिवर्द्धित और परिवर्तित होकर अन्य दूसरे समिश्रणो से युक्त होता रहता है तथा रूप रस, गन्ध और स्वाद मे भी परिवर्तन प्राप्त करता है । जैन सस्कृति भी इस सामान्य सिद्धान्त का अपवाद नही है । इस सस्कृति के आविर्भावक कौन थे और यह किस स्वरूप मे उद्गत हुई ? यह एक कठिन समस्या है जिसका समाधान सम्भव नही । पुरातन प्रवाह का जैसा भी स्रोत प्रस्तुत है, उसके सहारे जैन सस्कृति के स्वरूप को पहचाना जाता है ।

अन्य सस्कृतियो के समान जैन सस्कृति के भी दो रूप हैं । पहला बाह्य और दूसरा आन्तर । बाह्य रूप वह है जिसे उस सस्कृति के अतिरिक्त अन्य सामान्य जन भी अपनी इन्द्रियो से जान सकते हैं । आन्तर स्वरूप का आकलन तो एक मात्र उस ही को होता है जो उसे अपने जीवन मे आत्मसात् करता है । आन्तर सस्कृति-मय जीवनयापन करने वाले व्यक्तियो के जीवन-व्यवहारो, तथा निकट के वाता-वरण पर पडने वाले प्रभावो से वे किसी भी आन्तर रूप का सस्कृति की अनुभूति कर सकते हैं । सस्कृति का क्षेत्र इतना विशाल और व्यापक होता है कि उसे देश, काल, जाति, सम्प्रदाय भाषा और भावो की सीमा मे नही बाधा जा सकता है ।

जैन संस्कृति की आत्मा उसका निवर्तक धर्म है । पुनर्जन्म के चक्र से निवृत्ति कराने वाला निवर्तक कहा जाता है । भारतीय संस्कृति के विचित्र और विविध ताने-बाने को गहराई से देखें तो आपको दृष्टिगत होगा कि भारतीय आत्मवादी दर्शनो मे कर्म-काण्डी मिमासक के अतिरिक्त सभी निवर्तक धर्मवादी हैं ।

आदि काल से जो धीरे-धीरे निवर्तक धर्म के अग प्रति अग रूप मे आचार सहिता विकसित हुई वह निम्न प्रकार है —

(१) आत्म शुद्धि जीवन का मुख्य ध्येय है ।

(२) मोह, अविद्या, तज्जन्य तृष्णा का मूलोच्छेद उद्देश्य प्राप्ति मे अनिवार्य है ।

(३) उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शारीरिक, मासिक, वाचिक विविध तपस्याओं का तथा नाना प्रकार के ध्यान, योग का अनुसरण करना पंच महाव्रतों का अनुष्ठान करना।

(४) मद्यमांस आदि का यावज्जीवन निषेध।

भगवान् महावीर ऐसे ही सम्प्रदाय के नेता बने। आप से पूर्व २३वें भगवान् पार्श्वनाथ हो चुके थे। आज जैन शब्द का आशय भगवान् महावीर द्वारा पोषित सम्प्रदाय के त्यागी, गृहस्थी, श्रावक सब ही का बोध होता है इसके लिये पहले निर्ग्रंथ और समणोवासग आदि व्यवहृत होते थे।

संस्कृति का ध्येय मानव मात्र का कल्याण है। यह ध्येय तभी वह पूरा कर सकता है जब वह अपने जनक और पोषक राष्ट्र की प्रगति और विकास की ओर उन्मुख हो। संस्कृति का वाह्य स्वरूप केवल उत्थान के समय ही प्रस्फुटित होता है—उस ही समय वह चित्ताकर्षक स्रोत होता हैं, परन्तु संस्कृति के हृदय की बात ही निराली है। संकट काल हो अथवा विकास की चरम सीमा हो, उसकी आवश्यकता तो सदा सर्वदा समान ही बनी रहती है। कोई भी संस्कृति केवल अपने प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास की रोचक गाथाओं और विरुदावली पर जीवित रहने की आशा नहीं कर सकती, जब तक उसका भविष्य निर्माण में योग न हो। इसका समस्त आचार-विचार मुक्ति प्राप्ति की आकांक्षा पर अवस्थित है।

श्रमण धर्म के मूल प्रवर्तक कौन-कौन थे, वे कहा और कब हुए, इसका यथार्थ और पूरा इतिहास अज्ञात हैं। पर हम उपलब्ध साहित्य के आधार पर इतना कहने की स्थिति में हैं कि नाभि पुत्र ऋषभ तथा आदि विद्वान् कपिल साम्य धर्म के प्रबल समर्थक थे। ब्राह्मण ग्रन्थों मे ऋषभ का उल्लेख उग्रतपस्वी के रूप मे है सही, पर उनकी पूरी प्रतिष्ठा जैन परम्परा में ही है जब कि कपिल का ऋषि रूप से निर्देश जैन कथा साहित्य में विद्यमान है फिर भी उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा सांख्य परम्परा में तथा सांख्यमूलक पुराणों मे है। ऋषभ और कपिल आदि द्वारा जिस आलोपम्य भावना की ओर तन्मूलक अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा जमी थी उस भावना और उस धर्म की पोषक अनेक शाखा-प्रशाखायें थीं, जिनमे कोई बाह्य तप पर तो कोई ध्यान पर, तो कोई चित्तशुद्धि पर अधिक भार देती थी, पर साम्य या क्षमता सबका समान लक्ष्य था।

जिस शाखा ने साम्य सिद्धि-मूलक अहिंसा को सिद्ध करने के लिए अपरिग्रह पर अधिक बल दिया और उसी ने परिग्रह बंधन के त्याग पर अधिक जोर दिया तथा कहा कि जब तक परिवार एवं परिग्रह का बंधन हो, पूर्ण अहिंसा या पूर्ण साम्य

सिद्ध नही हो सकता, श्रमण धर्म की वही शाखा निग्रंथ नाम से विख्यात हुई। इसके प्रधान प्रवर्तक नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ ही जान पड़ते है।

अहिंसा की भावना के साथ-साथ त्याग और तप की भावना अनिवार्य रूप से निग्रंथ धर्म मे ग्रथित तो हो ही गई, किन्तु साधक के मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि बाह्य तप और बाह्य त्याग पर अधिक बल देने से क्या आत्म शुद्धि सम्भव है? इसी प्रश्न के उत्तर मे यह विचार भी फलित हुआ कि क्या राग द्वेष आदि मलिन वृत्तियों पर विजय पाना भी मुख्य साध्य है। इस साध्य की सिद्धि जिस अहिंसा तप या त्याग से नही, वह अहिंसा, तप और त्याग कैसा ही क्यो न हो, आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। इस ही विचार के प्रवर्तक 'जिन' कहलाने लगे। ऐसे जिन अनेक हुये, परन्तु जिन कथित जैन धर्म कहने से मुख्यतया महावीर के धर्म का ही बोध होता है जो राग द्वेष की विजय पर ही प्रधानतया बल देता है। धर्म विकास का इतिहास कहता है कि उत्तरोत्तर उदय मे आने वाली नूतन धर्म की अवस्थाओ मे उस-उस धर्म की पुरानी अविरोधी अवस्थाओ का समावेश अवश्य रहता है। यही कारण है कि जिन धर्म निग्रंथ धर्म भी है और श्रमण धर्म भी है।

जैन श्रुत रूप से विख्यात द्वादशागो या चतुर्दश पूर्व मे सोमाइये सामायिक का स्थान शीर्षस्थ है—यही आचाराग सूत्र है। जैसे ब्राह्मण परम्परा मे सन्ध्या एक आवश्यक कर्म है वैसे ही जैन परम्परा मे गृहस्थ और त्यागी सब के लिए समान रूप से छः आवश्यक कर्म बताये हैं।

जैन परम्परा मे साम्य दृष्टि पर अधिक बल दिया गया है। साम्य दृष्टि को ब्राह्मण परम्परा मे लब्धप्रतिष्ठ ब्रह्म कह कर साम्य दृष्टि पोषक समस्त आचार विचार को ब्रह्मचर्य, बेम्भचेराई कहा है। धम्मपद और शान्ति पर्व की तरह जैन धर्म मे भी धारण करने वाले श्रमण ब्राह्मण कहकर श्रमण और ब्राह्मण के बीच का अन्तर मिटाने की चेष्टा की गयी है, यही जैनियो का अनेकान्त महामन्त्र है।

हिंसा से निवृत्त होना अहिंसा है—इसी प्रश्न के समाधान के लिये जैन धर्म मे चार विद्यायें फलित हुई हैं—आत्म विद्या, कर्म विद्या, चारित्र विद्या और लोक-विद्या। इस प्रकार अहिंसा, अनेकान्त और तन्मूलक विद्यायें जैन धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा है।

गणतंत्र भारत की पुरानी धरोहर है। अगर हम मे अन्याय मात्र का सामना करने का नैतिक बल विद्यमान है तथा निस्सार मतभेदो एव स्वार्थों को त्याग कर राष्ट्र, समाज और गण धर्म की रक्षा करने के लिए बलिदान करने की क्षमता आ जाय तो किस की सामर्थ्य है, जो हमें अपने पूर्वजो की सम्पदा के अधिकार और

उपभोग से वचित कर सके ? गण धर्म मे जो असीम शक्ति निहित है, उसका अगर हम उपयोग करना सीखलें अथवा जीवन मे उसे उतारलें तो जैन धर्म विश्व मे दिवाकर की तरह चमक उठे। जैन युग मे नवलिच्छी और नवमल्ली जाति के अठारहगण राज्यो का गणतत्र इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो पर अकित है।

तप

श्रमण सस्कृति जैन संस्कृति का पर्याय है। यह तप प्रधान सस्कृति है। तप जैन दर्शन का प्राण तत्त्व है। प्राचीन आगमो मे तपस्वी को श्रमण कहकर परिभाषित किया है। श्रमण अर्थात् साधु, इसके तीन रूप हमे देखने को मिलते हैं—श्रमण, समण और शमण—श्रमण श्रम धातु से निष्पन्न है। श्रम का अर्थ परिश्रम है।

श्राम्यन्तीति श्रमणा., तपस्यन्तीत्यर्थ का आशय तपस्या, खिन्न, क्षीण है तो व्यक्ति स्वयं के श्रम से अपनी आत्मा का उत्कर्ष करता है, श्रमण कहलाता है। आचार्य शीलोक ने भी श्रमण शब्द की विवेचना निम्न प्रकार से की है—

'श्राम्यति तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमण.' अर्थात् उसका जीवन तपोमय है जो सतत श्रम और तप मे आप्लावित है—पीडा, कष्ट और दु ख सहन करते हुये कायक्लेश से अपनी आत्मा को विकासोन्मुख बनाता है वह श्रमण कहा जाता है। इस प्रकार तप जैन सस्कृति और दर्शन का प्राण तत्त्व है। तप जीवन उत्कर्ष का प्रशस्त पथ है।

जैन धर्म मे तप का वही स्थान है, जैसा देह मे हृदय का। जैन साधना का मूल अंग तप के अमृत से आप्लावित है। तप आध्यात्मिक साधना का प्राण वायु है।

जैन दर्शन में आत्मा की उच्चता तथा नीचता का मापदण्ड स्वर्ग अथवा नर्क को नही माना है, वह शुद्धि को स्वीकारता है—जैनाचार्यो ने आत्मा की निर्मलता, पावनता और शुद्धता को जीवन का मूलाधार कहा है—जब तक आत्मा में पवित्रता नही आती वह विकार मुक्त नही होता, उसे सत्य के दर्शन नही होते—जब तक वह कर्म रूपी मल के लेप से मुक्त नही है तब तक उसे उपयोग नही आता—तैरना नही आता—निशिवासर डुबकिया लगाता रहता है तथा डूबने की तैयारी करता रहता है। हमारा प्रयोग जब शुभ और अशुभ से अलग होकर शुद्ध चिदानन्द की ओर उन्मुख होता है तब वह पुनीत बनता है—तप उस चिदानन्द की ओर अग्रसर करने वाला मूल तत्त्व है—ससार दिशा से वीतराग की ओर ले जाने वाली नौकाए—इस अर्थ में तप वह साधना है जो मानव को आत्मिक भावो की ओर ले जाने वाली गति है, प्रकृति है और प्रवृत्ति है।

श्रमण सस्कृति मे तप साधना अन्य सस्कृतियो से सर्वथा भिन्न और कटका-

योगदान सराहनीय रहा है। महाविद्यालय के इतिहास मे आपका तथा श्री श्रीचन्दजी गोलेछा का नाम वडे सम्मान के साथ लिया जावेगा।

किसी भी सस्था और सगटन की प्रगति तथा विकास उस सस्था के कार्य-कर्ताओ तथा कर्मचारियो की निष्ठा, कार्यतत्परता श्रमशीलता का प्रतिविम्ब होता है। एस० एस० जैन सुबोध उ० मा० विद्यालय ऐसे ही व्यक्तियो पर गर्व करता है। एक ओर प्रवन्ध-समिति के माननीय सदस्यो का उदार दृष्टिकोण, दूरदर्शिता, कार्यक्षमता की प्रधानता है, दूसरी ओर उस सस्था के कर्मचारियो की कर्तव्य परायणता भी प्रमुख तत्त्व माना जाता है। कई वार माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की परीक्षाओ मे यहा के छात्र मेरिट लिस्ट मे आते रहे हैं, जो इसके प्रवल प्रमाण हैं। सेवा निवृत्त प्राचार्य श्री वालचन्द्र वैद्य की गत ३७ वर्ष की सेवायें इस सस्था को एक अर्थ मे वरदान सिद्ध हुई हैं। आपने प्रधानाध्यापक तथा प्राचार्य दोनो पदो पर कार्य करते हुये जिस योग्यता कार्यक्षमता व निष्ठा का परिचय दिया है, वह सर्वथा आपकी कीर्ति को अक्षुण्ण वनाये रखने मे समर्थ है। आज भी वर्तमान प्राचार्य श्री नथमल गोलेछा सस्था के सुदृढ सवल सिद्ध हो रहे हैं। आप को जो पद विरासत मे मिला है, वह निस्सेन्दह आपकी कीर्ति कौमुदी का प्रकाशमान नक्षत्र है। इतिहास की पुनरावृत्ति है।

••

श्री अमर जैन मेडिकल सोसाइटी

लगभग १९६० की घटना है। लगता है, कल की सी बात हो। चातुर्मास था—आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज सा० के संसर्ग से पर्युषण-पर्व बडे उल्लासपूर्ण वातावरण मे मनाये जा रहे थे—धर्म की प्रभावना सर्वत्र व्याप्त थी, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य की चर्चा वहुत हो चुकी थी, फिर भी चर्चा को किनारा कहा था ? सवसे मूल प्रश्न तो यह है कि उस ज्ञान को दिनचर्या मे ढालें, तभी यह ससारी जीवन वन्धनो से मुक्त हो सकता है—यही ऊहापोह होते-होते सवत्सरी समाप्त हो गई। आचार्य श्री के गुरुभाई आत्मार्थी श्री अमरचन्दजी महाराज भी जयपुर मे विद्यमान थे। कुछ दिनों से उनका शरीर शिथिल होता जा रहा था। चातुर्मास के दौरान उनका स्वास्थ्य नितान्त गिर पडा। उनके जीवन और मृत्यु के वीच सघर्ष चल रहा था। उनकी भौतिक लीला ने जयपुर के स्थानकवासी समाज को एक नया-मोड दिया। समाज के कतिपय उदारमना मानव उनकी स्मृति को स्थायित्व देने की दिशा मे किसी उधेडवुन मे थे। उन्होंने स्मृति को मूर्त रूप देने के लिये श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी का गठन किया। इस सम्पूर्ण कार्य मे

स्व० श्री स्वरूपचन्द चोरडिया व श्री सागरमलजी डागा का योगदान इस सस्थान के लिये वरदान सिद्ध हुआ है । सोसाइटी उनकी सेवाओ से उपकृत है ।

सोसाइटी का प्रमुख और प्रधान उद्देश्य, विना किसी जाति, समाज, वर्ण और लिग भेद के मानव मात्र के स्वास्थ्य के क्षेत्र मे अपनी सेवायें देना है। चिकित्सा की समीचीन व्यवस्था इस सोसाइटी का ध्येय है। भारत के इतिहास-प्रसिद्ध व राजस्थान की राजधानी गुलाबी नगर जयपुर के अपने अनूठे आकर्षण हैं। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी भी उन आकर्षणो के अचल मे अंकुरित एक अनुपम व नूतन उपलब्धि है ।

जैन धर्म, ज्ञान और क्रिया के समन्वय का मार्ग है। ज्ञान में जीवन मे स्वर्णिम प्रभात का उदय होता है, विवेक का दीप प्रज्ज्वलित होता है और साधना का पथ प्रशस्त होता है। क्रिया से जीवन को गति मिलती है तथा ज्ञान का विवर्द्धन होता है। जैन सन्त इस ही भावना और प्रेरणा के पोषक होते हैं। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी का कथानक इस ही साधना से उपकृत है ।

आज इस सोसाइटी के अन्तर्गत, श्री अमर जैन चिकित्सालय, परीक्षण प्रयोगशाला, एक्स-रे केन्द्र तथा टीके लगाने की व्यवस्था गतिमान है। अमर-भवन चल रहा है नर्सिग होम इसकी भावी योजना है, जिसकी आज बड़ी माँग है।

सोसाइटी ने अपनी भावी योजनाओ तथा लक्ष्य को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से श्री सवाई मार्नासह हाइवे मे स्थित हवेली तिवाडियान का क्रय १९६४ मे किया था। संस्थान के सदस्यो के अटूट उत्साह, लगन तथा निष्ठा के फलस्वरूप नये भवन का आशिक भाग वनकर तैयार हो गया है और अब नवीन योजना का क्रियान्वन उसी मे हो रहा है।

सेवा के कार्य मे कभी कोई अभाव, अभाव नहीं रहता। सेवा भावी व्यक्तियो के संरक्षण तथा विवेकपूर्ण दिशादर्शन से सस्था अपने अपेक्षित लक्ष्य तक पहुंचने मे समर्थ होगी, ऐसी हमारी मान्यता है। नेक इरादे कभी अधूरे नही रहते। जन-जन का सहयोग संस्था का संबल है और उन्ही के योग मे यह अकुरित पुष्पित और पल्लवित हो रही है ।

जीव दया और कबूतर खाना

ब्रिटिश कालीन भारत का जमाना था। आगरे मे आये दिन हजारो कबूतरो का शिकार कर शासक अपनी इच्छा-पूर्ति करते थे। जैन धर्म के अनेको सहधर्मियो ने इसे एक अत्यन्त दुखद घटना ही नही अपितु आगरे के नाम पर कलक माना। वैसे भी हिन्दू धर्म मे कहिये अथवा श्रमण सस्कृति मे कहिये, कबूतरो की हिंसा को बडा घोर पाप माना है। श्रमण तो अहिंसा की बारीकी पर चलते हैं, उन्होने जयपुर के सहधर्मी भाइयो मे इस संदर्भ मे सम्भाषण करके यह निश्चय किया कि आगरे मे प्रतिदिन कबूतरों को उपयुक्त यातायात के साधनो द्वारा जयपुर भेजा जावे। जयपुर के श्री सघ ने जीव दया तथा कबूतर खाना शीर्षक सस्था को आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया। यही नहीं, यहा घायल पशु-पक्षियों की देख-भाल भी की जाने लगी।

प्रारम्भ मे इस प्रवृत्ति के प्रवल स्तम्भ श्री सोभागमलजी छाजेड तथा रूपचद्रजी आदि वन्धु रहे हैं। आप दोनो वन्धुओ के पश्चात् श्री केसरीचन्द्रजी कोठारी ने उक्त प्रवृत्तियो को आगे वढाने मे असीम साहस और क्षमता का परिचय दिया। श्री कोठारी के निधन के उपरान्त वर्तमान मे श्री कन्हैयालालजी अग्रवाल उक्त प्रवृत्ति की देख-भान कर रहे हैं। श्री अग्रवाल एक धार्मिक निष्ठा के व्यक्ति हैं।

••

श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार

सयोग कहिये या अभाव, स्थानकवासी जैन समाज के तपोनिष्ठ, क्रियासाधक, चिन्तक और धर्म की ध्वजा फहराने वाले आचार्य श्री विनयचन्द्रजी महाराज सा० का निधन जयपुर के जैन समाज के लिये न केवल आघात पहुँचाने वाला ही था अपितु श्री सघ की प्रगति को आगे वढाने मे गतिरोध उत्पन्न करने वाला भी था। कौन जानता था कि वह अदृश्य आत्मा अपरोक्ष रूप मे भी जयपुर के स्थानकवासी समाज के लिये प्रेरणा दायक सिद्ध होगी।

सन्त, समाज का नैतिक चिकित्सक ही नही होता, वरन् वह आगम साहित्य का ज्ञाता और द्रष्टा दोनो ही होता है। जयपुर श्री सघ के कर्मठ कार्यकर्ताओ ने उनकी अदृश्य प्ररणा से प्रेरित हो, जैन आगमो, शास्त्रो के सग्रह करने की दिशा मे आचार्य श्री के नाम पर श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार की स्थापना की। हस्तलिखित ग्रन्थो व शास्त्रो की प्रामाणिक पाण्डुलिपियो के सरक्षण का शुभ सकल्प किया। इस प्रकार सन् १९६० में उक्त ज्ञान भडार की स्थापना की गयी।

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार न केवल जैन शास्त्रो की निधि ही है, अपितु पुरानी हस्तलिखित पुस्तको का अथाह आगार भी हैं। आज यह सस्थान जैन दर्शन के विद्यार्थियो के लिये शोध सस्थान का केन्द्र बन चुका है। प्रस्तुत भण्डार में लगभग ३०,००० हस्तलिखित पुस्तकें, दुर्लभ चित्र और अनूठे मानचित्र विद्यमान हैं।

श्री विनयचन्द्र ज्ञान-भडार की स्थापना से ही स्व० श्री सोहनलालजी कोठारी का योगदान सर्वोपरि रहा है। वे स्थान-स्थान पर जाकर दुर्लभ ग्रन्थो का सग्रह करने मे श्रम तथा अर्थ दोनो रूपो मे अपना योग देते थे। वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक इस शोध-सस्थान के कर्त्ता-धर्त्ता रहे। श्री कोठारी निष्ठावान, धुन के पक्के और इरादे के मजबूत इन्सान थे। यद्यपि श्री कोठारी का भौतिक शरीर आज हमारे बीच नहीं है, फिर भी विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार के इतिहास मे उसके विकास और प्रगति मे उनका नाम आदर के साथ लिया जावेगा।

श्री कोठारी के असामयिक निधन के पश्चात् इस सस्थान की देख-रेख श्री श्रीचन्द्रजी गोलेछा के सबल हाथो मे है। श्री गोलेछा, जिन्हे प्राय: बाबू सा० के नाम से जाना जाता है, एक सरल प्रकृति के व सहज स्वभाव वाले, आडम्बर से दूर रहने वाले सशक्त मानव हैं। अपेक्षा की जाती है कि उनके सरक्षण मे यह भण्डार निश्चित ही अपने अपेक्षित उन्नत स्वरूप को प्राप्त करेगा।

●●

बर्तन भण्डार

बर्तन भण्डार भी श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ की विविध प्रवृत्तियो मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व की घटना होगी— स्व० श्री स्वरूपचन्द्रजी चोरडिया ने अपनी सुपुत्री श्रीमती प्रेमबाई नवलखा के विवाह मे थाली, गिलास और कटोरियो के ५० सेट श्री सघ को भेंट कर इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया था। स्व० श्री जतनमलजी नवलखा, स्व० श्री मिश्रीमलजी खींवसरा तथा श्री नन्दलालजी बुरड ने इस प्रतिष्ठान को सम्पन्न बनाने में अपना अपूर्व योग दिया है। श्री सरदारमलजी ढड्ढा का इस प्रवृत्ति को प्रभावशाली, सम्पन्न बनाने मे सराहनीय योग रहा है। श्री ढड्ढा एक लम्बी अवधि तक बर्तन भण्डार उप-समिति के सयोजक के रूप मे कार्य करते रहे। आपके पश्चात् श्री जगमोहनलालजी सुराणा ने भी इसे आगे बढाने मे अपना प्रशसनीय योग दिया है। आज बर्तन भण्डार पूर्ण रूप से श्री संघ के हाथों मे जयपुर की जनता की सेवा कर रहा है। आज पूर्णत: यह भण्डार श्री सघ की गतिविधि का अग

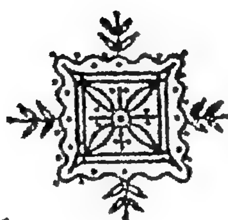
बन चुका है। साम्प्रदायिक भावों से ऊंची उठ कर यह संस्था समाज के व्यक्तियों की सेवा कर रही है।

••

धार्मिक रात्रि पाठशाला

धर्म ही जीवन है, धर्म विहीन जीवन नारकीय जीवन होता है। नन्हे-मुन्ने बालकों में धार्मिक संस्कार प्रतिष्ठापित करने की दिशा में श्री संघ ने एक धार्मिक पाठशाला का श्री गणेश किया। प्रारम्भ में इस पाठशाला की देख-रेख श्री भौरीलालजी सुमन, श्री केसरीलालजी कोठारी, गट्टीलालजी पाटनी, उमरावमलजी सुकलेचा आदि के मजबूत हाथों में थी। साथ ही बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओं के लिये छात्र-छात्रा तैयार किये जाते रहे हैं। आज भी यह कार्य बड़ी द्रुत गति से यथावत् चल रहा है। वर्तमान में इस कार्य की देख-रेख श्री संघ के हाथों में विद्यमान है।

••



श्री संघ और चातुर्मास

—श्री पारसमलजी डागा

श्री शान्ति जैन पुस्तकालय से प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर जयपुर में हुए चातुर्मास की सूची

वि म	विराजित सन्त
१९०५	श्री फतेहचन्द्रजी म०
१९०६	—
१९०७	श्री सीतारामजी म०
१९०८	म० श्री फतेहचन्द्रजी, नं० ५, म० श्री अमरसिंहजी न० २ म० श्री हरकचन्द्रजी, न० २, जीवराजजी तपस्वी
१९०९	पूज्य श्री हमीरमलजी म०, (श्री रतनचन्द्रजी सम्प्रदाय)
१९१०	म० श्री उदयचन्दजी
१९११	म० श्री सीतारामजी
१९१२	म० श्री ५ गणीजी वलदेवजी म०
१९१३	म० श्री अमीचन्दजी (कोटावाला)
१९१४	म० श्री मेघराजजी (श्री रतनचन्द्रजी सम्प्रदाय)
१९१५	म० श्री रतनचन्दजी (रामसिंहजी के सम्प्रदाय)
१९१६	म० श्री ५ मातजी खजारामजी म०
१९१७	म० श्री गणी वलदेवजी म०
१९१८	म० श्री ५ किस्तूरचन्दजी म०
१९१९	म० श्री ५ अमरसिंसजी म० (श्री गणेशदासजी सम्प्रदाय)
१९२०	पूज्य श्री ५ कजोडीमलजी म० (श्री रतनचन्दजी स०)
१९२१	म० श्री ५ गणीजी वलदेवजी म०
१९२२	म० श्री ५ नन्दरामजी म० (श्री रतनचन्द्रजी स०)
१९२३	म० श्री ५ कनीरामजी (ढाणा ६) राजमलजी, भभूतसिंहजी, वालचन्दजी चन्दनमलजी, ज्ञानचन्द्रजी।
१९२४	पूज्य श्री कजोडी मलजी, विनयचन्दजी, रामलालजी, किस्तूरचन्दजी,

मुल्तानचन्दजी, (भीवराजजी) दीक्षाला म० श्री सादूलसिंहजी
(ढाणा ६+१)

१६२५ पूज्य श्री उदयचन्दजी म० (ढाणा ५)
१६२६ म० श्री ५ कनीरामजी म० (ढाणा ७) श्री चन्दरामजी, मगलचन्दजी, नणचन्दजी, वालचन्दजी, चन्दनमलजी, भीवराजजी, ढाणा २
१६२७ म० श्री गनीजी वलदेवजी म० ढाणा ५
१६२८ म० श्री फकीरचन्दजी (ढाणा ४)
१६२६ म० श्री तपसीजी पन्नालालजी म० ढाणा ४
१६३० — —
१६३१ पूज्य श्री कजोडीमलजी म० ढाणा ४, विनयचन्दजी, मुल्तानचन्दजी, सोभागमलजी, आर्जाजी, उमाजी कौरहा ढाणा ७
१६३२ म० श्री पन्नालालजी, तपसीजी (ढाणा ८)
१६३३ म० श्री सुखलालजी, ढाणा २, विरधीचन्दजी, जुहारमलजी, सतिया, तीजाजी ढाणा ३, विलासाजी ढाणा ५
१६३४ म० श्री जसरामजी, किशनलालजी, गणेरामजी तपसी, जीवराजजी।
१६३५ म० श्री पूनन्दरामजी (ढाणा ३) म० श्री रायचन्दजी ढाणा ३ म० सतिया चिरजीवी म० ढाणा ५
१६३६ म० श्री दयाचन्दजी किशनलालजी (ढाणा २)। म० श्री चोथमलजी ढाणा ६ (१ म० देवलोक हो गये मार्ग)
१६३७ खीवसागरजी, कृपारामजी, चिमनरामजी (उदयचन्दजी समुदाय) श्री गनीजी, तपसीजी केस म० मतियाजी ढाणा ३ छगन कवरजी
१६३८ १—आरजी जी श्री सिरजीजी, म० के पास मिति अषाढ सुदी ५ स० १६३० बृहस्पतिवार को बाईचोपजी की दीक्षा
सेठ सदासुखजी वागा
२—स्वामीजी नन्दरामजी म० विनयचन्दजी, जसरामजी, शोभाचन्दजी, ठाकुरदास, गोर्धनजी, सुखराजजी (ढाणा ७)
३—म० श्री मज्जूलालजी का ढाणा २ (केवलचन्दजी, जवाहरमलजी)
४—पूज्य श्री उदयचन्दजी ढाणा २
५—म० सती विरजाजी ढाणा ७
६—मा० सती तीजाजी ढाणा ४
१६३६ १—म० श्री हुक्मीचन्दजी स० ढाणा २—गुलाबचन्दजी, रूपचन्दजी

वि स	विराजित सन्त
	२—स्वामीजी गुलावचन्दजी, हीरालालजी
	३—म० स०—उदयचन्दजी स० प्र० ठाणा ३
	४—झमकू म० म०
१९४०	१—म० श्री अमरसिंहजी म० प्र० ठाणा ४
	२—म० श्री घासीरामजी, ठाणा ७ म० श्री मोहनलालजी
१९४१	१—म० श्री रेख राजजी ठाणा ५
	२—म० श्री रिद्धकरणजी ठाणा २
	३—म० सती तेजाजी
	४—म० सती जड़ावजी महाराज
१९४२	
१९४३	
१९४४	
१९४५	
१९४६	पूज्य श्री विनयचन्दजी म० सा० जसराजजी म० सा०
१९४७	म० श्री वालचन्दजी
१९४८	
१९४९	छोटाजी महासतिया जी (रगुजी म० का स० प्रा०)
१९५०	छोटाजी महा
१९५०	वालचन्दजी
१९५१	पूज्य श्री विनयचन्दजी
१९५२	छगनलालजी म० सा कोटावाला
१९५३	वालचन्दजी
१९५४	वालचन्दजी
१९५५	वालचन्दजी
१९५६	श्री चन्दनमलजी मा० सा०
१९५७	मयारामजी म० सा० (पजाव वाला)
१९५८–७१	स्थिरवाम श्री विनयचन्द्रजी म० सा०
१९७२	पूज्य विनय चन्द्रजी म० सा० माधवमुनीजी—मगसर वुदी १२ को श्री विनयचन्द्रजी मा० सा० देवलोक
१९७३	श्री देवीलालजी म० मा०
१९७४	पूज्य श्री लालजी म० सा० महताव कवरजी
१९७५	पूज्य शोभाचन्द्र जी म० मा०

वि सं	विराजित सन्त
१९७६	पूज्य शोभाचन्दजी म० सा०
१९७७	श्री खूबचन्दजी तथा श्री छोटीलालजी म० सा० व्याख्यान
१९७८	श्री नन्दलालजी म० सा०
१९८०	श्री धन कवरजी म० सा नन्दलालजी का ढाणा १
१९८१	श्री माधवमुनीजी म० सा०
१९८२	श्री माणक कवरजी पने कवरजी
१९८३	श्री किस्तूरचन्द्रजी म० सा० इन्द्र कवरजी
१९८४	श्री मोतीलालजी म० सा० एकलिंगदास जी
१९८५	देवीलालजी म० सा० धनकवरजी म० सा०
१९८६	श्री चौथमलजी म० सा० (जयमलजी वाले)
१९८७	पूज्य श्री हस्तीमलजी म० सा०
१९८८	रामकरणजी ढाणा ४ कोटावाले
१९८९	श्री वन कवरजी, आर्याजी म० सा० ढाणा ७
१९९०	शतावधानी मुनि श्री रतनचन्दजी म० सा० ढाणा ४, श्री भागमलजी (पजावी) ढाणा ४, श्री हजारीमलजी (जयमल जी) छगनमलजी (भूख-राजजी) ढाणा २, अमर कवरजी
१९९१	श्री गणीजी उदयचन्दजी म० सा० पजावी ढाणा ८
१९९२	श्री छोगाजी म० मा०, राधाजी म० सा० ढाणा ८
१९९३	पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० तथा सोकराजजी अर्जाजी
१९९४	— —
१९९५	युवाचार्य श्री १००८ श्री गणेशीलालजी, प्रवर्तनीजी श्री अम्मद कवरजी, ढाणा १०
१९९६	श्री मोडीलालजी म० सा० ढाणा ४
१९९७	श्री अमर कवरजी म० सा० ढाणा ४, देवलोक कार्तिक सुदी १ प्रात एव
१९९८	उपाध्याय श्री सहसमली म० सा० सतिया हुक्मकंवरजी ढाणा ३ पजाबी
१९९९	श्री किस्तूरचन्दजी म० सा०—सती हुक्म कवरजी ढाणा ३ पजावी
२०००	श्री काशीरामजी म० सा० ढाणा १०
२००१	श्री हस्तीमलजी म० सा० ढाणा ३ + १ आर्याजी श्री सज्जन कवरजी
२००२	श्री रामकवरजी
२००३	श्री किस्तूरचन्द्रजी म० सा०
२००४	श्रावक हरकचन्दजी का भादवा सुदी ६ ने टौंक से विहार करके भान

वि म	विराजित सन्त
	कवरजी आरजीजी टाणा ४ से आकर चतुर्मास—
२००५	श्री रामलालजी म० मा० केवलमुनी
२००६	श्री गणेशीलालजी म० सा० आरजीजी, श्री चम्पाजी म० सा०
२००७	श्री हीरालालजी म० मा०, खूबचन्द्रजी म० सा०, केसरीमलजी म० मा० देवलोक कार्तिक सुदी ५
२००८	श्री पवन कुवरजी, चम्पक मालजी, ढाणा ६
२००९	श्री सूरजमलजी म० सा० फूलचन्द्रजी म० मा० टाणा २ मानकवरजी ढाणा ४, टोंक विहार कर जयपुर पधारे
२०१०	श्री ताराचन्द्रजी म० सा० पुष्कर मुनिजी हीरामुनी जी, देवेन्द्र मुनी जी, श्री भैरव मुनि जी (भैरव मुनि जी देवलोक, सोनकंवरजी, चतरानजी, पुष्पमालजी प्रभाव प्रेम कवरजी ढाणा ६ अर्जाजी
२०११	सह मत्री श्री हस्तीमलजी म० सा० ढाणा ८ सोनकवरजी म० सा० ढाणा ६ जसकवरजी ढाणा ६ (लाल भवन में)
२०१२	श्री ताराचन्दजी म० सा० ढाणा ६ कवि श्री अमरचन्दजी म० सा० अमोलकचन्दजी विजय मुनि जी, ब्रजराजजी, केसरीमलजी, श्री हजारी-मलजी—शेपकाय विमल मुनि
२०१३	श्री ताराचन्द्रजी ढाणा ५, तीमे ताराचन्द्र जी म० मा० कार्तिक सुदी १४ वार शनिवार सुवह ५ बजे देवलोक
	प्रधान मन्त्री जी मदनलालजी म० सा० ढाणा ५ सोन कवरजी
२०१४	महामती श्री रम्भाना सुमति कंवरजी—(श्री आनन्द ऋषिजी म० म० सम्प्रदाय)
२०१५	महासती श्री उमराव कंवरजी, उम्मेद कवरजी, कचन कवरजी
२०१६	उपाध्याय मुनि श्री हस्तीमलजी म० सा० ढाणा ८
	दीक्षा १—भद्रामके श्री श्रीचन्द्रजी—मिती अपाढ बुदी—३ अमीचन्द्रजी देवलोक
२०१७	महासती श्री वदनकवरजी—श्री सुन्दरजी
२०१८	— —
२०१९	पूज्य माधव मुनिजी म० के सम्प्रदाय—श्री १००८ श्री सूर्यमुनि श्री सुरेन्द्र मुनि श्री रूपमुनि, श्री उमेशमुनि महासति चतर कंवरजी
२०२०	श्री वदन कुवरजी म० सा०
२०२१	पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म० सा० प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी कवि श्री अमरचन्द्र जी म० सा० महासती श्री सुमति कंवरजी, केसर कवरजी

वि स.	विराजित सन्त
२०२२	श्री तपस्वी श्री लालचन्द जी म० सा० श्री रामसुनि श्रीकान्त मुनि—पारसमुनि जी चारों बाप बेटे
२०२३	महासती श्री वदन कुंवरजी, मैना कंवरजी
२०२४	दीक्षा—रतनबाईजी जगढवाना वैसाखजी ८ सोमवार पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज—पुष्पवतीजी, जसकंवरजी चातुर्मास—उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महामुनि वदन कंवरजी
२०२५	शेषकाल श्री नेमीचन्दजी श्री सत्येन्द्रमुनि ठाणा ३ गोपीलालजी चैत्र मे फूलचन्द्रजी म०, श्री सुदर्शन मुनि, प्रमोद मुनि, प्रकाशचन्द्र मुनि, पदमचन्द्र-रामकंवरजी विनय मुनि आर्याजी महामुनि श्री वल्लभ व तामान समग्र
२०२६	श्री छगन कंवर जी म० सा० शेषकाल—वैशाख में पूज्य हस्तीमलजी म०—सायर कंवर मधुकरजी
२०२७	वृजलालजी मधुकरजी
२०२८	समरथमलजी
२०२९	श्री नानालालजी म० सा०
२०३०	श्री हस्तीमलजी म० सा०
२०३१	महासती कौशल्याजी म० सा०

शुद्धिकरण

स० २०१६	श्री अमरचन्दजी महाराज (देवलोक हुवे)
स० २०२४	श्रीमती रतनबाई गोजगढ वाला की दिक्षा, महासती मदन कंवरजी म सा.
स० २०२५	चातुर्मास श्री सुदर्शन मुनि जी म० सा० ठाणा ८
स० २०२६	चातुर्मास महासति छगन कंवर जी म० सा० शेषकाल आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० व सायर कंवर जी, मैनाकंवर जी म० सा०
स० २०२८	बहुश्रुत पंडित मुनि श्री समरथमल जी म०सा० ठाणा ६
स० २०२९	आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० का चातुर्मास
स० २०३०	आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० एवं महासति जसकंवरजी म० सा० का चातुर्मास:

पंथ हैं अनेक लक्ष्य एक है

लें० श्री प्रवीणचन्द्र जैन

भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण महोत्सव के पावन पर्व पर अभूतपूर्व तपस्या के सदर्भ मे प्रकाशित की जाने वाली पुस्तक के लिए लेख लिखना हो, लिखने वाला व्यक्ति ससारी हो, ससारी व्यक्ति मुक्त के विषय मे क्या लिखे, पर लिखना तो उसे है, क्योकि वह वचन बद्ध हो चुका है, यह एक समस्या थी जो लगभग दो महीने से मेरे मन मे एक बड़े प्रश्न के रूप मे उपस्थित थी। आज के जीवन मे महावीर स्वामी की या उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा धर्म के विचार की उपयोगिता भी है या नहीं इस बात से यह प्रश्न जुड गया तो वह और भी बड़ा हो गया। मैंने सोचा आज के असतुष्ट, अर्थपरायण और अर्थ के लिए अन्धा होकर बेतहाशा दौड़ मे लगे हुए मानव के लिए यदि भगवान महावीर जैसे किसी महात्मा की आवश्यकता न हो तो क्या हिंसा और उससे पैदा हुई समस्त क्रूरता के प्रचारक किसी दुरात्मा की आवश्यकता होगी ? अहिंसा और प्रेम के सन्देश के स्थान पर क्या उसे हिंसा और द्वेष का आदेश ही मान्य होगा ? क्या वह साहस के साथ कह सकेगा कि मानव को आज हिंसा और आतङ्क की ही आवश्यकता है ? प्रश्न एक ही है, पर उसके पहलू अनेक हैं। इसका उत्तर प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्तर और क्षमता के अनुसार दे।

भगवान् महावीर ससार के उन महापुरुषो मे से एक हैं जिन्होंने कभी यह नही कहा कि जो बात वे कह रहे हैं वह केवल उन्ही की है, उन्होने तो उन शाश्वत जीवन-मूल्यो की देशना की जो मानव को महा मानव और परम मानव बनाते आये हैं, प्राज्ञ को सर्वज्ञ बनाते आए हैं आत्मा को परमात्मा बनाते आये हैं। जिस मानव धर्म पर उन्होंने बल दिया वह उनसे पूर्व के उन महात्माओ, ऋषियो महर्षियो अथवा तीर्थंकरो के द्वारा प्ररूपित है जो मानव को, अविभूत मे परिस्थित आत्मा को, पतन के गड्ढे से बचाते या निकालते आये हैं। उन बातो की उन्होंने चर्चा की जिनसे आध्यात्मिक समत्व की प्रतिष्ठा होती है, हीनता की भावना हटकर आत्म विश्वास बढता है। उन्होने कहा मेरा धर्म तो जिन-धर्म है, ऐसा धर्म जो मानव को उसकी कमजोरियो पर विजयी बनाता है, उसे प्रबुद्ध करता है। स्पष्ट है, यह धर्म मानव

के प्राचीनतम धर्मों मे से एक है जिसका सस्थापक कोई नही, जो आत्मा से उद्भूत है और आत्मा ही का उपकारक है, जो प्राचीनतम होते हुए भी आधुनिकतम है। यदि वन्ध की समस्या सार्वकालिक है तो मुक्ति के उपाय भी शाश्वत हैं।

जिस समय भगवान् महावीर एक क्षत्रिय राजकुमार के रूप मे पैदा हुए वह समय भारत मे ही नही, समस्त विश्व मे धार्मिक क्रान्ति का युग था। धर्म के सूर्य पर जो अधर्म का तामिस्र मेघपटल छाया हुआ था उसे दूर करने का युग था। विषमताओ के रहते हुए भी समता का अनुभव कैसे हो सकता है यह बताने का युग था। यह ध्यान देने की वात है कि जिन्होंने यह काम किया वे भौतिक परिवेशो और उनके प्रभावो से मुक्त ही महामानव थे। इन सभी लोगो ने देश, काल और पात्र के अनुसार अपना कार्य किया। भारत मे ही कई ऋषियो और आचार्यों ने व्राह्मणो मे जहा कर्मकाण्ड और विधि-विधानो की आवश्यकता पर वल ही नही दिया, उनका विशाल रूप भी प्रस्तुत कर दिया, वहा आरण्यको और उपनिषदो मे उन्होने शुद्ध आध्यात्मिकता की भी आवश्यकता वतायी, त्रिगुणातीत व्रह्म की अनुभूति की साधना के मार्ग वताये। इसी समय भगवान वुद्ध ने भी मानवता को करुणा का सन्देश दिया। जन साधारण को आध्यात्मिकता की ओर लाने के लिए महाकाव्यो और पुराणो की रचना का महारम्भ हुआ। भारत के पडौसी देश पारस मे महात्मा जरथुस्थ ने मानव के मानस को आध्यात्मिकता की ओर मोडा तो दूसरे पडौसी देश जापान मे शिन्तोधर्म का नवीन सस्करण प्रकट हुआ। चीन मे ताव धर्म का जो मध्यम मार्गी रूप व्याप्त हुआ उसे महात्मा कन्फ्यूशस ने क्रमवद्ध करके सर्व ग्राह्य वनाया। यूनान, मिस्र और इजराइल की भूमि मे हजरत मूसा ने जूडा धर्म का प्रचार किया। आत्मा को परमात्मा का दर्शन या वोध कराया। इसी धर्म से आगे चलकर दो वडे धर्म निकले जो आज विश्व भर मे फैले हुए हैं—एक ईसाइयत और दूसरा इसलाम। दोनो मे आत्मा और परमात्मा दोनो की प्रतिष्ठा है। इसी युग मे वौद्ध धर्म भारत के वाहर उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम मे फैला।

इस युग के क्रान्तिकारी महात्माओ ने, जैसा ऊपर कहा गया है, विश्व भर मे मानवीय गुणो के या जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था उत्पन्न करने मे अपनी समस्त शक्ति लगायी, अज्ञान का अंधकार हटा कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। यदि उन्नीसवी शती को औद्योगिक क्रान्ति का युग कह सकते हैं तो इस युग को आध्यात्मिक क्रान्ति का युग कह सकते हैं।

भगवान् महावीर भी इसी क्रान्तिकारी आध्यात्मिक युग के प्रमुख क्रान्तिकारियो मे से एक थे। आज मैं इन्हे दूसरे महामानवो से अलग करके नहीं देखना चाहता, दूसरो के साथ ही देखना पसन्द करूगा।

इन महा मानवो द्वारा प्रस्थापित या विस्तारित धर्मों के अध्ययन और चिन्तन तथा उसके बाद आचरण से ही उस क्रान्ति का रहस्य समझ मे आ सकता है जो उनके द्वारा हुई। हम यहा उन विशिष्ट बातो का उल्लेख नही करेंगे ज एक धर्म को दूसरे से अलग करती हैं, बल्कि उन सामान्य बातो की चर्चा करेंगे जो एक को दूसरे से मिलाती हैं।

परिस्थितिया सब स्थानों पर अलग-अलग थी, पर एक बात सब जगह थी, वह यह कि साधारण जन अपने आत्मभाव को भूले हुए था, कुछ डरा या सहमा सा हुआ था। जीवन के प्रति उपेक्षा या निराशा का भाव उसके मन पर छाया हुआ था, वह पतन के गहरे गर्त में पड़ा हुआ था। वैसे आत्मा का पतन या नाश तो होता नहीं, फिर भी नाश और पतन की बात व्यवहार में अवश्य आती है। किसी भी कारण से सही, आत्मा ज्ञान के प्रकाश से विमुख होकर जब अज्ञान के अंधेरे मे फस जाती है तो उसे पतित या नष्ट कहा जाता है। इन महात्माओ ने सब से पहला और सब से बड़ा काम यही किया कि मानवो को ज्ञान-मार्ग मे प्रवृत्त करके उन्हें निराश दशा मे हटाकर आशावान बनाया। "किसी ने कहा, तुम कौन हो ? पहचानो तो। किसी ने कहा, मेरी ओर देखो तो मैं वही हूँ जो तुम हो। किसी ने कहा, हम मे बड़ा और छोटा कोई नहीं है, सब एक हैं। किसी ने कहा, देखो तुम वह नहीं हो जो समझते हो, तुम तो अजर, अमर और अविनाशी हो। किसी ने कहा तुम अपने आप से पूछो; 'मै कौन हू ?" इस प्रकार उन्होंने मानव के मन में जानने की इच्छा (जिज्ञासा) उत्पन्न की। जब जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है तो मार्ग दिखायी देता है, अवरोध क्षणिक या काल्पनिक प्रतीत होते हैं, तब उन्हें हटाना या उन पर विजय पाना सरल होता जाता है। भारतीय दर्शनों में जिज्ञासा पर बडा बल दिया है, जैन दर्शन में सम्यक्त्व के लिए जिज्ञासा को प्रथम सोपान कहा है। विदेशी धर्मों ने भी इसे सत्य की शोध के लिए अलग-अलग भाषा मे आधार भूत इच्छा कहा है। तो, एक काम जो उन्होने किया वह है अपने आपको अशक्त समझने वाले मानव को अपनी सर्वथा शक्तता का बोध दिया।

'तुम कौन हो ?' इस सम्बोधक प्रश्न से, 'मैं कौन हूं ?' यह अनुभूति की ओर ले जाने वाला प्रश्न उदित हुआ। मन में अपने आप ही यह विचार आया, मैं शरीर तो हो नही सकता। तब क्या हू, कुछ हूँ तो अवश्य। ऐसा कुछ जो अविभूत नहीं है, भौतिकता पर आश्रित नहीं है। ज्ञानियो ने इसे आत्मा यह नाम दिया और इससे सबंधित सारे ज्ञान को अध्यात्म कहा। भूत का अर्थ है जो था (किसी रूप मे) वह अब नहीं है (उस रूप मे); अर्थात् भूत परिवर्तन शील तत्व है, इसके विपरीत आत्मा जो वर्तमान है, सदा है। भूत और वर्तमान का अन्तर समझ मे

आ जाय तो अनादि, अनन्त, न भूत न भविष्यत बल्कि वर्तमान तत्व का रहस्य भी समझ मे आ जाना चाहिये। किसी ने कहा ईश्वर है जो अनादि और अनन्त, उसकी ओर जाओ, उसे प्रसन्न करो, पुत्र बनकर. सेवक बनकर, मित्र बनकर, पति अथवा पत्नी भी बनकर, सार यह किसी तरह भी उसका सान्निध्य प्राप्त करो, तुम उसमे मिल जाओगे, वही हो जाओगे। किसी ने कहा, ये सम्बन्ध किससे जोडते हो ? ईश्वर की तलाश मे कहा मारे-मारे फिरते हो ? ये सम्बन्ध तो अपने आप से ही जोडो, कहो मैं ही अपना पिता, माता, भाई, बन्धु, पत्नी, मित्र सब कुछ हूँ। अनादि हूँ, अनन्त हू, आत्मा हूँ, परमात्मा हू, सिद्ध हू, अपना तीर्थ स्वयं हूँ, क्या है जो मैं नही हूँ ? और क्या है जो मुझ से बचा है ? यह वह शक्तिबोध या स्वरूप बोध है जो इन महामानवो ने मानव मात्र को अपनी-अपनी पदावली मे दिया। मानव उठ खडा हो गया, जागरूक हो गया, अपनी शक्ति को पहचानने के लिए मानो चल पडा उस शक्ति को पाने के लिये जो अपने मे है अपने से बाहर नही।

इस ओर कैसे प्रवृत्त हो सकता है मानव ? मार्ग क्या है ? उपाय क्या है ? क्या करे वह ? क्या न करे वह ? इसके उत्तर मे सब धर्मों ने मानो एक स्वर से कहा, जगत् की जड वस्तुओ को देखो सभी तो बदलती रहती हैं, नाशशील हैं। तुम छोड़ो, त्याग करो उसे अपना रूप मानने का जो नश्वर है। यदि उसे ईश्वर ने बनाया है तो तुम्हारे लिए, यदि वह अनादि है अकटक है तो भी वह तुम्हारे उपयोग के लिए। उसकी दासता छोडो। इसकी विधि है अपने स्वार्थों मे उदात्तता को लाओ। जो कुछ तुम्हारे पास है उसे ईश्वरार्पित करो या दूसरो को, समाज को अर्पित करो। दूसरे भी तुम्हारी तरह ही हैं। उन्हे पराया न समझो, उनके साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करो। जैसा तुम करोगे वैसा ही तुम्हे मिलेगा। अप्रमत्त होकर दूसरो के शोषण से बचोगे तो कोई भी तुम्हारा शोषण नही कर सकेगा। प्रेम की हरियाली चारो तरफ लहलहाने लगेगी। दूसरो को शीतलता और शान्ति मिलेगी और तुम्हे भी। वह काम तुम जितनी आस्था के साथ करते जाओगे बन्धन कटते जायेंगे, सशय हटता जायगा। फिर क्रूरता के स्थान पर प्रसन्नता का, भय के स्थान पर उत्साह का, क्रोध के स्थान पर क्षमा का, अभिमान के स्थान पर विनय का, सग्रह से स्थान पर वितरण का, साराश यह कि सकीर्णता के स्थान पर व्यापकता का विशालता का भाव सर्वत्र छा जायगा।

इस उदात्तता का एक निश्चित परिणाम सभी धर्मों ने यह बताया है कि इससे जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियो मे समता और एकता के दर्शन होगे। जिसे सही अर्थ मे स्वतन्त्रता या साम्यवाद कहते हैं उसकी उपलब्धि होगी। यहा यह बता देना अप्रासगिक न होगा कि स्वतन्त्रता और साम्यवाद दोनो मे आध्यात्मिक

धरातल पर ही गतिशील होने का विचार प्रस्तुत किया गया है। इस धरातल पर गतिशील मानव करोड़ो की सम्पदा बाट दे तब भी कम होगा और मुस्कराहट भी दे दे तो भी वह बडी से बडी सम्पत्ति के दान से कम न होगा। कौन कितना देता है इसका महत्व नहीं, महत्व इस बात का है कि उससे स्वतन्त्रता मिलती है या नही, समता फैलती है या नही। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सब कुछ हो गया, यदि ऐसा नही हुआ तो अह का ही पोपण हुआ जिससे जहर फैला और मूर्च्छा व्याप्त हो गयी।

इसी प्रकार सब धर्मों ने जीवन के आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनो क्षेत्रो मे समन्वय की भावना पर बल दिया है। इस भावना से सस्कृति का और सस्कृति से समन्वय की भावना का पोपण होता है, दोनो परस्पर उपजीव्य और उप जीवक हैं। एक के बिना दूसरी की स्थिति नही। यो भी कह सकते हैं मानवीयता रूपी सिक्के के ये दो पहलू हैं। प्राणी मात्र के प्रति भ्रातृता का भाव, प्रेम और सेवा का मार्ग, अहिंसा और क्षमा का भाव, दूसरे के गुणो को स्वीकार करने का भाव, इस प्रकार के समस्त भावो की प्रशसा सब धर्मों मे की गयी है। ये समस्त गुण समन्वय की भावना से ही प्रकाश मे आते हैं। समन्वय के लिए यह अनिवार्य है कि दूसरो के प्रति आदर का भाव हो। समन्वय को विकास के लिए आवश्यक मानते हुए प्राय सब धर्मों ने कहा है कि सत्य उतना ही नही जितना कहने या करने मे आता है, वह तो उससे कही अधिक व्यापक है। इसलिए मानव मात्र के वचन और कर्म के सत्य को समझने के लिए परस्पर समादर की अत्यन्त आवश्यकता है। जैन धर्म मे अनेकान्तवाद, स्याद्वाद या अपेक्षावाद को सत्य के अनन्त स्वरूपो को समझने के लिए स्वीकार किया गया है। वहा कहा गया है कि जिस अपेक्षा से कोई बात कही या की गयी है उस अपेक्षा को समझो। यदि समझ में न आये तो प्रयत्न करके समझो। जो ठीक लगे उसको स्वीकार करो, जो ठीक लगे उसे दूसरो को बताओ। आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया से समन्वय का भाव बढता है। यो भी कह सकते हैं कि दूसरो की अच्छाई को अपना सकने की कला समन्वय है, इसी मे अहिंसा फैलती है, प्रेम पनपता है। समन्वय की विरोधिनी शक्ति का नाम घृणा है। यह बुद्धि और बल के वैभव के अभिमान से पैदा होती है। जिससे घृणा की जाती है वह असामाजिक बन जाता है, वह पाप कर्म मे भी रक्त होता जाता है। इस देश मे और दूसरे देशो में घृणा के भाव से क्या-क्या न हुआ। मानव-जाति टुकडों-टुकडो मे बंट गयी। काले-गोरे का भेद कितना तीव्र है। युद्धो के मूल में भी यही घृणा का भाव है, इसलिए सभी धर्मों ने ईर्षा, द्वेष और घृणा की निन्दा की। अपनी शक्ति का घमड न करो, दूसरे को नीच मत समझो, घृणा पाप

से करो पापी से नहीं, इस प्रकार की वातें धर्म ग्रन्थो मे भरी पडी हैं। इसी समन्वय की वात को लेकर एक आचार्य ने कहा—

पक्षपातो नमे वीरे न द्वेष कपिलादिषु,
युक्तिमद्वचन यस्य कार्यस्तस्य परिग्रहः ॥

कवि ने इसी भाव को अपनी भावना मे इस प्रकार प्रकट किया—

जिसने राग द्वेष कामादिक, जीते सव जग जान लिया,
सव जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो ॥

भाव यह है कि साधु कोई भी हो वह आदरणीय है। वह असाधु या छद्मवेषी नही है यही वात देखने की है। जैनो के महामन्त्र मे भी यही समन्वय की भावना है—जो अर्हद् है, जो आचार्य है, जो उपाध्याय है, जो साधु है, वह नमस्करणीय है। यहाँ किसी व्यक्ति विशेष का नाम नही है। साधुओ की ये श्रेणिया हैं, उनकी योग्यताए निश्चित हैं। जिसमे जैसी योग्यता हो उसके अनुसार वह आदरणीय है। इसमे देश, काल, वर्ग, जाति आदि किसी प्रकार की सकीर्णता नही है। इनकी पूजनीयता वेष के कारण नही गुण और कर्म के कारण है।

ये हैं कुछ सामान्य वातें, और भी हैं जो भगवान् महावीर जैसे महामानवो ने ससार के कोने-कोने मे फैलायी। गर्व है मानव जाति को इन पर। इनमे से किस के कथन मे या आचरण मे क्या कमी और क्या विशेषता है उसे वताना यहा अभीष्ट नही है। अभीष्ट केवल यही है कि उन्होने अपने-अपने ढग से मानवो को अध्यात्म की ओर गतिशील होने की प्रेरणा दी। उन्होने जो कुछ कहा या किया है उसे आज अधिक सरलता से समझा जा सकता है। धर्म तो गति की प्रेरणा देने वाला तत्व है, उसकी यह शक्ति आज भी वैसी ही है जैसी पहले थी, आगे भी यह तो रहने वाली ही है। फिर आज तो वैज्ञानिक अनुसधानो से प्राप्त आविष्कार भी इतने और ऐसे हो गये हैं कि देश और भापा की दूरी प्राय समाप्त हो गयी है। एक भापा से दूसरी भापाओ मे अनुवाद भी तेजी से हो रहे हैं। धर्म गुरुओ और राजा-महाराजाओ के आतङ्क भी समाप्त हो गये हैं। राजनैतिक स्वतन्त्रता भी इसमे सहायक हो गयी है। धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से कोई भी आज ऐसी स्थिति मे हो सकता है कि वह वता सके कि आज लोक के सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए इन धर्मों की उपयोगिता है या नही।

आज जिस वात की आवश्यकता है वह सम्यक्त्व की है। सम्यक्त्व का अर्थ है

रूढियो का और परम्पराओ का सन्तुलित अथवा वैज्ञानिक परिचय । जीवन के मूल्यो में आस्था रखना मानव के सर्वतो मुखी विकास के लिए बहुत जरूरी है । आस्थावान् व्यक्ति इन मूल्यो का विश्लेषण करके तत्सबधी ज्ञान प्राप्त करे और ज्ञान प्राप्त करके ही विरत न हो जाय, बल्कि उनका अपने जीवन मे आचरण भी करे । भगवान् महावीर ने बन्धन से, अज्ञान से मुक्ति का जो मार्ग बताया है वह यही है–सम्यक्त्वी बनो मिथ्यात्वी मत बनो ' सम्यक् दर्शन (आस्था), सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के सम्मिलित रूप से आस्थावान होकर ज्ञान के आचरण मे मुक्ति प्राप्त होती है । सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग ।

धर्मो मे कोई विरोध नही हो सकता । धर्म और अधर्म मे विरोध अवश्यभावी है । धर्म ही की विजय होती है । धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा । इसका भाव जगत् की सही स्थिति का आधार धर्म ही है । यतो धर्मस्ततो जयः । धर्म हो तो विजय निश्चित है ।

जयन्ती के अवसर पर भगवान् महावीर के अनुसार हम सर्व धर्म समभावी हो ।

—इस कामना के साथ यह लेख समाप्त होता है ।



श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, जयपुर

का

एक परिचय

—श्री बालचन्द्र वैद्य

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर, राजस्थान की राजधानी, भारत के इतिहास प्रसिद्ध नगर जयपुर के उन सगठनो, सस्थाओ तथा समाजो मे है जिनका स्थान अपने आप मे गौरवपूर्ण होने के साथ-साथ लोक सेवा की भावना से भी ओतप्रोत है। वैसे तो इस सगठन का जीवन सन् १६१८ से प्रारम्भ होता है किन्तु इनका अस्तित्व किसी न किसी रूप मे जयपुर नगर के निर्माण के साथ सलग्न है। किन्तु इसका लिखित लेखा जोखा शृ खला-बद्ध मे नही मिलता। अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी हमारे इतिहास मे सक्रान्तिकाल के नाम से विख्यात हैं। समग्र देश विदेशी सत्ता के अधीनस्थ था, जिसमे देशी राज्यो और रियासतो की तो बात ही छोड़िये। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर, दयानन्द सरस्वती आदि देश-भक्त, समाज सुधारक तथा धर्म क्रान्ति के अग्रदूत जहा धार्मिक प्लेटफार्म से राष्ट्रीय भावनाओ को युवा पीढी में प्रतिष्ठित कर रहे थे वहा राजस्थान मे ऐसे भी सन्त थे जो सजग प्रहरी के तुल्य जनता को लोक सेवा और आत्म-शुद्धि का पाठ पढा रहे थे। वे सुदूर प्रान्तो मे जा-जाकर आत्म-शुद्धि का पाठ पढाते थे और समाज को नई दिशा देकर एकता के सूत्र में बांधने का भगीरथ प्रयत्न भी करते थे। चातुर्मास काल मे यह द्रष्टव्य होता था।

राजनैतिक दृष्टि से कोई भी जाति और सम्प्रदाय अपने सगठन नही बना सकते थे। पच व्यवस्था अवश्य विद्यमान थी, किन्तु समाज के गणमान्य व्यक्ति अपनी कार्य क्षमता, सद्भावना तथा वैभव और प्रतिष्ठान के कारण आदर और सम्मान के पात्र होते थे, उनका कथन सर्वमान्य होता था। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर का प्रारम्भिक स्वरूप इसी प्रकार का था। पच के निर्णय भगवान् के निर्णय माने जाते थे, प्रत्येक व्यक्ति उनके आदेश की अनुपालना करना

अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझता था। इस काल मे स्थानकवासी जैन समाज की व्यवस्था, मूलत जगन्नाथजी दूगड, छोटीलालजी चुन्नीलालजी सुकलेचा, दीवान नथमलजी गोलेछा, सागरमलजी गोलेछा, इन्द्रमलजी टड्ढा, फूलचन्दजी सुकलेचा, भैंरुलालजी सुकलेचा, प्रतापचन्दजी नवलखा, जमनालालजी नवलखा, जीवनमलजी डागा, कन्हैयालालजी डागा, मगनमलजी वोथरा, चौथमलजी वोथरा, केसरीमलजी मूमल, चाँदमलजी कोठ्यारी, व गुलावचन्दजी वैद्य आदि वन्धुओ के सवल करो मे थी। ये सभी वन्धु समाज के स्वरूप के निर्माता थे। अपनी सूझ-बूझ तथा कार्य-कुशलता से वे जहा धार्मिक आयोजनो का सफलता पूर्वक सचालन करते थे, वहा समाज के सामान्य जनो को सहारा देकर ऊचा उठाने मे कोई कसर भी नही रखते थे। श्वेताम्वर जैन समाज अपने विभिन्न समुदायो मे ऊचा उठकर एकरूप होकर सेवा-व्रत मे आगे वढ रहा था। एक प्रकार से ये सभी सज्जन सघ की नीव के पत्थर थे, वे समाज के आधार थे। आज श्री सघ उक्त वन्धुओ के पुण्य प्रताप से अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त कर रहा है।

१९वी शताब्दि के प्रारम्भिक वर्षों मे यह व्यवस्था मूलत. श्री मुन्नीलालजी सुकलेचा के हाथों मे थी। उक्त सज्जन स्थानकवासी समाज की दृष्टि मे लौह पुरुष माने जाते थे—सन् १९१८ मे महिला शिक्षा की दिशा मे उन्होंने एक कन्या शाला प्रारम्भ करने का सत्संकल्प किया। कन्या शाला की स्थापना उस काल की एक अनूठी उपलब्धि थी। यह वह काल था, जव मारवाडी समाज और विशेष कर व्यापारिक समाज इस दिशा मे उपेक्षा वृत्ति ही से काम लेता था। फिर भी श्री सुकलेचा तथा स्व० श्री भवरलालजी मूसल, जगन्नाथजी दूगड आदि वन्धुओ ने निरन्तर इस दिशा मे आगे वढने की चेष्टा की। १९५९-६० मे तत्कालीन प्रधाना-ध्यापिका तथा कार्यकारिणी समिति के प्रयासो से सस्था राजकीय अनुदान प्राप्त सस्थाओ की पक्ति में आवद्ध की गई—यह सस्था साम्प्रदायिक भावो से ऊची उठ-कर कार्य कर रही है। उन लोगो ने समाज की गति विधि मे तीव्रता लाने के लिये मित्र मडली के रूप मे प्रारम्भ कार्य किया। शनै २ कार्य का क्षेत्र वढता गया। कालान्तर मे ये महानुभाव सन्तो और साध्वियो के चातुर्मास भी सम्पन्न कराते थे। चातुर्मास व्यवस्था के लिये वे लोग मिलजुल कर कार्य करते थे, धन संग्रह भी होता था, किन्तु ऐसा अनुभव नही होता था। सन् १९२५ का वर्ष था—श्री सघ के लिए यह एक वडे महत्त्व का वर्ष था। माधव मुनि का चातुर्मास था और वे समाज सुधार की चर्चा कर रहे थे। आपने कहा कि "आखिर सामाजिक जीवन और राष्ट्रीय जीवन का स्तर नीचा क्यो गिरता जा रहा है? सरकार के विधान और उपदेश की वक्तृताए क्यो निष्फल हो रही हैं? उत्तर एक ही था कि कल्पना कीजिए कि एक वगीचा सूख रहा है—उसका माली उसे हरा भरा रखने के लिए

वृक्षो की टहनियो, शाखाओ तथा पत्तो पर पानी छिडकता है, नये-तये प्रकार के वैज्ञानिक खादो का वह उपयोग भी करता है, मगर जडो की ओर उसका ध्यान नही जाता, पौधे के इधर-उधर खरपतवार भी खडे हैं, फिर भी पेड सूखता जा रहा है। ऐसा लगता है कि पेड़ के जीने के भी आसार नही। ठीक यही अवस्था इस समय के समाज की भी है। समाज और राष्ट्र का मूल तो व्यक्ति है, जब तक व्यक्ति का जीवन ऊंचा नही होगा, समाज और राष्ट्र भी प्रगति की ओर उन्मुख नही हो सकेगा। व्यक्ति के ऊचे उठने का अर्थ उसका सयममय होना, शिक्षित होना, स्वार्थ—भावना से दूर रहकर जन-सेवा का सकल्प लेना है।"

पर्युषण आत्म-शोधन की प्रक्रिया पूरी कर महाराज श्री चातुर्मास विहार कर चले गये। उनकी धार्मिक चर्चाओ और सामाजिक वार्ताओ का स्थान नथमलजी के चौक में वैदो का मकान था।

महाराज श्री चातुर्मास विहार कर गाडोता पहुचे। सयोग की बात है कि ऐसे महान् चिन्तक, विचारक और समाज सुधार की दिशा मे उदार दृष्टिकोण रखने वाले तत्वज्ञानी का निधन सहसा हो गया। गाडोता की जैन जनता के लिये यह अपार दु.ख देने वाला सिद्ध हुआ। पूज्य मुनि श्री के परम शिष्य चम्पालालजी महाराज सा० ने पूज्य श्री की चादर ग्रहण की और उनकी प्रेरणा से जयपुर मे सर्वप्रथम श्री शान्ति जैन पुस्तकालय की स्थापना की गई। यह पुस्तकालय श्री उमरावमलजी सुकलेचा, रतनलालजी सुकलेचा, केसरीचन्दजी मूसल तथा जवाहरमलजी सेठ की सेवाओ से पुष्पित और पल्लवित हो रहा था। दूसरी ओर शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति करने हेतु स्व० श्री जगन्नाथजी दूगड, स्व० श्री केसरीमलजी चोरडिया, भवरलालजी मूसल तथा मुन्नीलालजी सुकलेचा प्रयत्नशील थे। उक्त बन्धुओ के सत्प्रयत्नो से बारह गणगौर के चौराहे पर स्थित भवन मे श्री सुबोध प्राथमिक शाला का शुभारम्भ हुआ।

उस समय समाज आज की तरह वैधानिक सगठन के स्वरूप मे नही बंधा था। मौखिक सम्भाषण, वार्तालाप विनय तथा प्रार्थनाओ से ही उस काल के निर्णय होते थे। उन्ही निर्णयो के परिणामस्वरूप श्री सुबोध पाठशाला की स्थापना की गई।

१ सितम्बर, १६३० का दिन श्री सघ के इतिहास मे बडा महत्त्वपूर्ण था। सघ की व्यवस्था के लिये विधिवत् चुनाव सम्पन्न कराये गये। सर्वसम्मत निर्णय मे कार्यकारिणी समिति का गठन किया गया। उस कार्यकारिणी समिति के विभिन्न पदाधिकारी तथा सदस्य निम्न प्रकार थे —

श्री मुन्नीलालजी मुकलेचा	अध्यक्ष
श्री मूलचन्दजी कोठारी	मन्त्री
श्री गुलाबचन्दजी बोथरा	सहमंत्री
श्री जौहरलालजी दयाचन्दजी (फर्म)	कोषाध्यक्ष

श्री केसरीचन्दजी चोरड़िया, श्री दुर्लभजी त्रिभुवन, श्री चम्पालालजी वैद्य, श्री रतनचन्दजी नवलखा, श्री भौंरीलालजी मूसल, श्री जगन्नाथजी दूगड, श्री केसरी चन्दजी कोठारी आदि सदस्यों ने इस सगठन का स्वरूप बना।

इस कार्यकारिणी समिति के कार्य-कलापो पर हम दृष्टि डालें तो सर्व प्रथम धार्मिक क्षेत्र पर हमारी दृष्टि जाती है। उस समिति द्वारा धार्मिक संस्कारो को जैन बालक और बालिकाओ में प्रतिष्ठित करने की दिशा मे विभिन्न कक्षाओ के लिये धार्मिक पाठ्यक्रम निम्न प्रकार से निश्चित किया गया :—

कक्षा प्रथम	नवकार मत्र, २४ तीर्थंकरो की नामावली
कक्षा द्वितीय	सामाजिक सूत्र-अर्द्ध
कक्षा तृतीय	सामाजिक सूत्र-सम्पूर्ण
कक्षा चतुर्थ	प्रतिक्रमण-अर्द्ध
कक्षा पचम	प्रतिक्रमण सम्पूर्ण

धार्मिक अध्ययन-अध्यापन के निरीक्षण का कार्य श्री दुर्लभजी, श्री गट्टीलाल जी पाटनी एव श्री भौंरीलालजी मूसल को सभलाया गया।

सुबोध पाठशाला की देख-रेख के सदर्भ मे यह निर्णय किया गया कि सुबोध पाठशाला का सचालन कार्य श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सघ करेगा।

दिनांक २३ सितम्बर, १९३० की साधारण सभा मे विधान की दिशा मे एक निर्णय यह लिया गया कि वर्तमान कार्यकारिणी समिति का कार्यकाल ३ वर्ष का होगा।

उसके बाद १९ जुलाई, १९३६ को हुई सभा मे विधान की दिशा मे निम्न निर्णय लिये गये :—

१—का० का० समिति के सदस्यों की सख्या १५ निश्चित की गई।

२—भविष्य मे एक व्यक्ति दो पदो पर नहीं रह सकेगा।

३—का० का० समिति का चुनाव प्रति ३ वर्ष मे होगा।

इन निर्णयो के उपरान्त नई का० का० समिति का गठन निम्न प्रकार से हुआ :—

श्री मुन्नीलालजी सुकलेचा	अध्यक्ष
श्री गुलाबचन्दजी बोथरा	मत्री
श्री गट्टीलालजी	सहमत्री
श्री केसरीमलजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष
श्री केसरीमलजी कोठारी	सह कोषाध्यक्ष
श्री भौरीलालजी भूमण	सदस्य
श्री रतनचन्द्रजी नवलखा	"
श्री कन्हैयालालजी डागा	"
श्री प्रेमचन्दजी लोढा	"
श्री सिरहमलजी कोठारी—मत्री	"
श्री श्रीचन्दजी गोलेछा—स० मत्री	"
श्री विनयसिहजी कर्णावट	"
श्री सागरमलजी हीरावत	"
श्री स्वरूपचदजी नवलखा	"
श्री उमरावमलजी सुकलेचा	"
श्री बालचद्रजी वैद्य	"

सगठन के कामो को सुचारु रूप से चलाने की दिशा मे निम्न उप-समितियो का गठन भी किया गया।

(१) भवन निर्माण समिति
(२) पाठशाला समिति

विधान-निर्माण

दिनाक २०-३-३७ की बैठक मे उप-समिति का नया विधान स्वीकृत किया गया। २७-३-३८ को हुयी साधारण सभा ने का० का० समिति का गठन निम्न प्रकार से किया —

अध्यक्ष	श्री मुन्नीलालजी सुकलेचा
मत्री	श्री गुलाबचदजी बोथरा
सहमत्री	श्री जेठमलजी सघी
कोषाध्यक्ष	श्री केसरीचदजी चोरडिया
सदस्य	श्री प्रेमचन्दजी लोढा

"	श्री नवरतनमलजी सुकलेचा
"	श्री श्रीचन्दजी गोलेछा
"	श्री सिरहमलजी कोठारी
"	श्री केसरीमलजी कोठारी
"	श्री विनयसिहजी कर्णावट
"	श्री वालचद्रजी वैद्य
"	श्री कन्हैयालालजी डागा
"	श्री गट्टीलालजी पाटनी

उक्त कार्यकारिणी समिति का सवसे महत्त्वपूर्ण कार्य विधान स्वीकृत करना था। फलस्वरूप सघ के सदस्यो के कर्त्तव्य तथा अधिकारो को एक पुस्तक के रूप मे तैयार किया गया।

५ अक्टूवर, १९३८ का दिन श्री सघ के जीवन काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना रहेगी। स्व० श्री फूलचदजी सुकलेचा की धर्मपत्नी स्व० श्रीमती लाल कुंवर ने श्री सघ के कार्य को सुदृढ वनाने हेतु तथा धार्मिक कार्यो को सम्पन्न कराने हेतु चौडा रास्ता स्थित लाल भवन को श्री सघ को भेंट कर दिया।

श्रीमती लाल कुवर का यह योगदान निश्चित ही उनकी उदार भावना और उनके धार्मिक आचार-विचार की गरिमा की ओर इगित करता है। श्री सघ की का० का० समिति ने अपनी एक वैठक मे उक्त भवन का नाम स्व० श्रीमती लाल कुवर की स्मृति मे "लाल भवन" रखने का निर्णय लिया।

२५-७-४० की साधारण सभा ने सघ की का० का० समिति के लिए निम्न प्रकार चुनाव किया—

अध्यक्ष—श्री मुन्नीलालजी सहमत्री—श्री गुलावचन्दजी वोथरा
मत्री—श्री भवरलालजी मूसल कोषाध्यक्ष—श्री केसरीचन्दजी चोरडिया

श्री विनयचन्दजी, श्री श्रीचन्दजी गोलेछा, श्री मगनमलजी सघी, श्री गट्टीलालजी पाटनी, श्री कन्हैयालालजी डागा, श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया, श्री प्रेमचन्दजी लोढा, श्री केसरीचन्दजी कोठारी, श्री सिरहमलजी कोठारी, श्री वालचन्द्रजी वैद्य और श्री केसरीमलजी कोठारी लाल हाथीवाले सदस्य चुने गये।

विद्यालय प्रवन्ध समिति का गठन निम्न प्रकार से किया गया श्री मुन्नीलालजी मुकलेचा, श्री विनयचन्द दुर्लभजी, श्री श्रीचदजी गोलेछा, श्री मगनमलजी सघी, श्री सिरहमलजी कोठारी, श्री गुलावचदजी वोथरा, श्री केसरीचन्दजी चोरडिया।

उक्त बन्धुओ ने मिडिल स्कूल को हाई स्कूल स्तर पर क्रमोन्नत करने का निर्णय लिया ।

श्री सुवोध मिडिल स्कूल को क्रमोन्नत करने के कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव का श्री सघ की कार्यकारिणी समिति ने भी अपनी ११–३–४३ की वैठक मे अनुमोदन कर दिया । इस प्रकार सन् १९४४ मे सुवोध मिडिल को माध्यमिक स्तर पर क्रमोन्नत किया गया । यह सस्था इसमे पूर्व वारह गणगौर के चौराहे पर स्थित भवन मे चलती थी, किन्तु स्थानाभाव के कारण श्री सघ ने उक्त विद्यालय को श्री ज्ञान प्रकाश भवन (वर्तमान भवन) मे स्थानान्तरित करने का निर्णय लिया । यह स्थान भी माध्यमिक स्तर पर कार्य करने के लिये छोटा पडता था । विद्यालय के एक वार्षिक समारोह मे तत्कालीन जयपुर राज्य के प्रधानमत्री स्व० सर मिर्जा इस्माइल अचानक विद्यालय भवन मे आये और उन्होने छात्रो की अधिक सख्या किन्तु भवन को छोटा समझ कर तुरन्त विद्यालय के पीछे वाली जमीन सस्था को प्रदान करने का आदेश दे दिया । उक्त आदेश को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से श्री सघ ने विद्यालय के नूतन भवन निर्माण के लिए धन राशि एकत्रित करने हेतु एक उप-समिति का गठन कर श्री श्रीचन्दजी गोलेछा को इस कार्य का भार सँभला दिया ।

उस समय विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पद पर मैं कार्य कर रहा था । विद्यालय के परिश्रमी अध्यापको के परिश्रम के वल पर उस समय यह सस्था अनुशासन और परीक्षा परिणामो की दृष्टि से जयपुर नगर की उच्चकोटि की सस्था मानी जाती थी । विद्यालय के परीक्षा परिणाम वडे ही आश्चर्यजनक होते थे, इसलिए सस्था के उदारमना सचालक इसको और भी उन्नत अवस्था मे देखना चाहते थे । मैंने यह प्रयास किया कि वापू वाजार की ओर वाली जमीन भी विद्यालय को प्राप्त हो जाय, तो एक भव्य हाल उधर तैयार करवाया जा सकता है और कुछ कमरे भी वन सकते हैं । प्रयास मे मुझे सफलता मिली और सरकार ने विद्यालय की प्रगति को देख कर वह जमीन भी विद्यालय के नाम कर दी । उस समय की कार्य-कारिणी का सहयोग यदि न मिलता तो इस समय जो नया भवन वापू वाजार व जौहरी वाजार के किनारे पर स्थित है, वह देखने को न मिलता ।

इस समय समाज के प्राचीन भवन और नये भवन मे कुल मिला कर इतनी जगह है कि वहा विद्यालय और महाविद्यालय की कक्षायें चलायी जा रही है । फिर भी महाविद्यालय के वदलते हुए स्वरूप को देख कर इस वात की आवश्यकता का अनुभव हुआ कि महाविद्यालय के लिए एक अलग भवन होना चाहिये । समाज के शिक्षा प्रेमी महानुभावो के उस विचार को सक्रिय रूप देने हेतु एक प्रयास और किया गया और रामवाग सर्किल के निकट स्थित विशाल भूखण्ड प्राप्त करने मे

सफलता मिल गयी। बीच मे कई कारणों से वह जमीन विवादग्रस्त हो गई थी किन्तु गत चार-पाच वर्ष से उस पर स्थानकवासी समाज का अधिकार हो गया और नये भवन का निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया गया। इस समय शिक्षा समिति के अध्यक्ष श्री सिरहमलजी नवलखा की देखरेख मे नये भवन का कार्य चल रहा है। श्री नवलखा सा० समाज के एक उत्साही, परिश्रमी और अनुभवी व्यक्ति हैं। समाज को उनसे बहुत सी आशायें हैं। यदि समाज का सहयोग पर्याप्त मात्रा में उन्हे मिला तो वे शीघ्र ही उस भवन के पूरा करवा सकेंगे, ऐसा मुझे दृढ विश्वास है।

दिनाक १७–७–४३ की साधारण सभा ने सशोधित विधान स्वीकृत किया। उसे प्रकाशित करने का निश्चय दिनाक २२–१०–४३ की बैठक मे लिया गया।

२६ सितम्बर, १९४३ को साधारण सभा ने का० का० समिति का गठन निम्न प्रकार किया—

सभापति	श्री	मोतीचन्दजी हीरावत
मन्त्री	,,	भौंरीलालजी मूसल
स० मन्त्री	,,	गुलावचन्दजी वोथरा
कोषाध्यक्ष	,,	श्री स्वरूप चन्दजी चोरडिया
सदस्य	,,	रतनलालजी सुकलेचा
	,,	सागरमलजी मेहता
	,,	कन्हैयालालजी डागा
	,,	केसरीमलजी लाल हाथीवाले
	,,	भौंरीलालजी मूसल
	,,	जतनमलजी नवलखा
	,,	केसरीमलजी कोठारी
	,,	सौभाग्यमलजी श्री श्रीमाल
	,,	गुलावचन्दजी वोथरा

उक्त कार्य का० समिति ने सघ की गतिविधियो को आगे बढाया तथा समाज को विकासोन्मुख करने की दिशा मे पर्याप्त रुचि ली—

१८–८–४६ की साधारण सभा ने पुन श्री मोतीचन्दजी हीरावत को अध्यक्ष मनोनीत किया तथा श्री गुलावचन्दजी वोथरा को मन्त्री का कार्यभार सँभलाया— कोषाध्यक्ष पद को श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया ने सुशोभित किया। २७ जौलाई १९४७ को साधारण सभा की बैठक आयोजित की गई। उपस्थित सदस्यो ने सर्व-सम्मत निर्णय लेकर निम्न प्रकार का० का० समिति का गठन किया —

अध्यक्ष	श्री	सुमेरचन्दजी कोठारी
मन्त्री	,,	गुलावचन्दजी वोथरा
कोषाध्यक्ष	,,	स्वरूपचन्दजी चोरडिया
सदस्य	,,	सिरहमलजी कोठारी
	,,	विनयचन्द भाई
	,,	केसरीचन्दजी कोठारी
	,,	वालचन्द्रजी वैद्य
	,,	श्रीचन्दजी गोलेछा
	,,	मिलापचन्दजी नवलखा
	,,	सिरहमलजी नवलखा
	,,	प्रेमचन्दजी लोढा
	,,	माणकचन्दजी गधी
	,,	मोतीचन्दजी
	,,	भवरलालजी

अ० भा० जैन श्वे० स्था० कान्फ्रेन्स के एक पत्र पर भी विचार विनिमय किया गया तथा रावलपिंडी के ८०० सहधर्मी जैन भाइयो के सहायतार्थ २००० रु० का अर्थ सग्रह किया गया। ६ मार्च, १६४६ की साधारण सभा ने सघ का रजिस्ट्रेशन कराने का निर्णय लिया। सोसाइटी एक्ट के अन्तर्गत श्री सघ को पजीवद्ध कराने का निर्णय निश्चय ही एक दूरदर्शिता तथा कार्य पद्धति की कुशलता का परिचायक है। उक्त अवधि का यह एक ऐसा निर्णय है, जिससे यह सकेत मिलता है कि श्री सघ की का० का० समिति किस प्रकार एकता स्थापित करने की दिशा मे जागरूक थी।

श्री सघ का प्रयास रहा है कि सारे सम्प्रदायो का एकीकरण किया जाय तथा स्थानकवासी सघ चातुर्मास काल मे एक व्याख्यान माला का आयोजन करे। उस समय की यह धारणा तथा यह विचार इस वात का प्रवल प्रमाण है कि श्री सघ किसी भी अवस्था में संगठन की धारा को विभिन्न स्रोतो मे प्रवाहित कर उसे शिथिल वनाना पसन्द नही करता था।

३०–७–५० की साधारण वैठक मे निम्न महानुभावो को सर्व सम्मति से चुना गया —

सभापति	श्री सुमेरचन्दजी कोठारी
मत्री	,, गुलावचन्दजी वोथरा

सहमन्त्री	श्री सिरहमलजी कोठारी
कोषाध्यक्ष	,, स्वरूपचन्दजी चोरडिया
सदस्य	,, रतनलालजी सुकलेचा
,,	,, सिरहमलजी कोठारी
,,	,, घीसीलालजी कोठारी
,,	,, केसरीचन्दजी कोठारी
,,	,, ज्ञानचन्दजी चोरडिया
,,	,, माणकचन्दजी गोधा
,,	,, सौभाग्यमलजी श्री श्रीमाल
,,	,, बालचन्द्रजी वैद्य
,,	,, विनयचन्द्र भाई दुर्लभजी
,,	,, सिरहमलजी नवलखा

दिनांक १४-८-५२ की साधारण सभा मे अ० भा० जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी कान्फ्रेन्स का एक पत्र प्रस्तुत किया गया, उक्त पत्र के निर्देशानुसार श्री सघ की साधारण सभा ने श्री सघ के नामकरण मे निम्न प्रकार सशोधन किया।

"श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन संघ"

दिनाक २१-७-५३ की साधारण सभा ने पुन. सशोधित विधान पर अपनी मुहर लगाई, तथा १६, अगस्त १९५३ को विधानानुसार का० का० समिति का गठन निम्न प्रकार से किया गया—

अध्यक्ष	श्री सुमेरचन्दजी कोठारी
मन्त्री	,, गुलावचन्दजी बोथरा
कोषाध्यक्ष	,, पूनमचन्दजी वडेर

श्री श्रीचन्दजी गोलेछा, श्री विनयचन्द दुर्लभजी, श्री मिलापचन्दजी नवलखा, श्री केसरीचन्दजी कोठारी, श्री शीलकुमारजी जैन, श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया, श्री चाँदमलजी मेहता, श्री गाडमलजी मूणोत तथा श्री बालचन्द्रजी वैद्य। सदस्य चुने गये।

उक्त का० का० समिति के कार्यकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य, जो सघ के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा, श्री सुबोध हाई स्कूल को इंटरमीडियट कालेज स्तर पर क्रमोन्नत करना था। सघ ने सदा शिक्षा और समाज दोनो को आगे बढाने मे अपना सामयिक योग दिया है। जहा वह बालको की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रयत्नशील था वहा समाज और धर्म दोनों क्षेत्रो मे भी अभिरुचि लेता था।

३१ अगस्त, १९५९ की साधारण सभा मे निम्न बन्धुओ को का० का० समिति के लिये चुना—

अध्यक्ष	श्री सुमेरचन्दजी कोठारी
मत्री	„ श्रीचदजी गोलेछा

चुनाव २१-८-५९

अध्यक्ष	श्री सुमेरचन्दजी कोठारी
मत्री	„ गुलाबचन्दजी बोथरा
कोषाध्यक्ष	„ प्रेमचन्दजी लोढा
सयुक्त मत्री	„ नथमलजी हीरावत
सदस्य	„ सागरमलजी डागा
„	„ नथमलजी हीरावत
„	„ श्रीचन्दजी गोलेछा

शिक्षा के बदलते हुए परिवेश मे प्री-यूनिवर्सिटी कक्षायें प्रारम्भ कराने का निर्णय लिया गया। १८-६-६० की साधारण सभा की बैठक समाज की शिक्षा समिति के इतिहास मे बडी महत्त्वपूर्ण कही जावेगी। उक्त बैठक मे इटरमीडियट कालेज को डिग्री कालेज स्तर पर क्रमोन्नत करने तथा राजधानी मे एक धर्मार्थ चिकित्सालय स्थापित करने का गुरुतर निर्णय लिया गया। फलस्वरूप महाविद्यालय मे विज्ञान सकाय की प्री-यूनिवर्सिटी और बी० एससी० कक्षाये प्रारम्भ की गयी।

समय के बढते हुये प्रभाव और आवश्यकता को देखते हुये १७-१२-६१ की सभा मे सघ के विधान मे पुन सशोधन तथा परिवर्तन एव परिवर्द्धन हेतु एक उप-समिति का गठन किया गया। उक्त समिति के सयोजक का कार्यभार श्री माणकचन्द्रजी गोधी को सँभलाया गया।

दिनाक १२-१२-६२ को पुन साधारण सभा का अधिवेशन आमन्त्रित किया गया। यह अधिवेशन मुख्यतया अखिल-भारतवर्षीय जैन श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स से आये एक पत्र पर विचार करने हेतु बुलाया गया था। कान्फ्रेन्स के पत्र के अनुसार श्री सघ के नामकरण मे निम्न प्रकार परिवर्तन करने का निश्चय हुआ।

"चूंकि अखिल भारतीय स्तर पर तमाम भारतवर्ष के सघ का नाम एक सा रखने का सुझाव अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स द्वारा किया गया है। अत आजकी यह साधारण सभा मौजूदा नाम को परिवर्तन करके निम्न लिखित नाम का निश्चय करती है।

"श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, जयपुर।"

दिनाक २६–२–६३ की साधारण सभा मे पुन. श्री सघ के परिवर्तित एव परिवर्द्धित विधान पर विचार विनिमय हुआ और निश्चय किया गया कि संशोधित विधान को प्रकाशित कर दिया जावे तथा सभी सदस्यो मे वितरित किया जाय। सदस्यता फार्म भी सभी लोगो से भरवा लिये जावें तथा पत्रिका तैयार करली जावे। सदस्यता शुल्क २५ पैसे आजीवन रक्खा गया।

दिनाक २५-९-६३ को नए विधान के अन्तर्गत चुनाव सम्पन्न हुए तथा नई का० का० समिति निम्न प्रकार घोषित की गई —

अध्यक्ष	:	श्री शान्ति भाई दुर्लभ जी
मत्री		,, मोहनलाल जी नवलखा
कोषाध्यक्ष	:	,, जगमोहनलाल जी मुराणा
सदस्य	:	,, प्रेमसिह जी मेहता
		,, उदयचन्द जी कोठारी,
		,, चुन्नीलाल जी ललवाणी
		,, रोशनलाल जी आदि

एडहाक कमेटी

पूर्ण अवधि तक उक्त कार्यकारिणी समिति कार्य न कर सकी। भाई श्री मोहनलाल जी नवलखा तथा अन्य बन्धुओ के त्याग-पत्र प्रस्तुत होने पर दिनाक २२-५-६५ को एक एडहाक कमेटी का गठन किया गया जिसके सयोजक श्री गुलाबचन्द जी बोथरा मनोनीत किये गये। श्री बोथरा ने सघ की गतिविधियो को बडी सतर्कता से आगे बढाया। दिनाक २७-५-६५ की बैठक मे शिक्षा–समिति के सयोजक श्री सिरहमल जी बम्ब द्वारा समाज की सभी शिक्षण सस्थाओ की कार्य-प्रणाली को और भी द्रुत गति से आगे बढाने हेतु शिक्षा-समिति के गठन और विधान की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया। यह निश्चय हुआ कि राजकीय सोसाइटी एक्ट के अन्तर्गत शिक्षा-समिति को रजिस्टर्ड करा लिया जावे। श्री सघ सरक्षक के रूप मे रहेगा—सघ की कार्यकारिणी की ओर से सघ के दो सदस्य शिक्षा-समिति की कार्य-कारिणी मे मनोनीत किये जावेंगे।

श्री संघ का चुनाव विधिवत् सम्पन्न कराने के लिए श्री माणकचन्द गधी को चुनाव अधिकारी मनोनीत किया—श्री गधी ने दिनाक ७-९-६५ को कार्य-कारिणी समिति का निर्वाचन निम्न प्रकार कराया—

अध्यक्ष	-	श्री गुलाबचन्द्र जी बोथरा
मत्री	:	,, गुमानमल जी चोरडिया
कोषाध्यक्ष	:	,, पूनमचन्द्र जी बडेर
सदस्य	:	,, केसरीचन्द्र जी कोठारी
		,, खेलशकर दुर्लभ जी
		,, जगमोहनलाल जी सुराणा
		,, श्रीचन्द्र जी गोलेछा
		,, स्वरूपचन्द्र जी चोरडिया
		,, सरदारमल जी ढड्ढा
		,, बालचन्द्र जी वैद्य

दिनांक ७ नवम्बर, १९७१ को चुनाव अधिकारी श्री कपूरचन्द पाटनी की देख-रेख मे श्री सघ के चुनाव इस प्रकार सम्पन्न हुए—

अध्यक्ष	•	श्री सागरमल जी डागा
उपाध्यक्ष	.	,, गणपतलाल जी कोठारी
मत्री	.	,, सरदारमल जी चौपडा
उप मत्री	•	,, रतनचन्द जी कोठारी
कोषाध्यक्ष		,, कैलाशचन्द जी हीरावत
सदस्य	:	,, गुमानमल जी चोरडिया
		,, उगरसिह जी बोथरा
		,, गुलाबचन्द जी बोथरा
		,, मोतीचन्द जी कर्नावट
		,, पूनमचन्द जी बडेर
		,, सौभाग्यमल जी श्री श्रीमाल
		,, बालचन्द्र जी वैद्य
		,, भवरलाल जी चोरडिया

इस समय समाज सघ की कार्यकारिणी के माननीय अध्यक्ष श्री सागरमलजी डागा सा० के असामयिक निधन के कारण उपाध्यक्ष श्री गणपतलाल जी कोठारी कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप मे कार्य कर रहे हैं।

पूज्य श्री नानालाल जी मा० सा० का चातुर्मास था। सभा भवन का अभाव था। प्रतिवर्ष तत्कालीन मत्री महोदय पावस प्रवचन की अस्थायी व्यवस्था करके अपने दायित्व को पूरा करते थे—वर्तमान कार्यकारिणी ने इसे उपयुक्त नही माना। समय केवल १ मास का शेष था किन्तु श्री डागा ने कहा "चौपडा जी समय की

परवाह न कीजिए, आप तो निश्चयवान वनिए, हमे सभा भवन को नया रूप देना है। आपकी तथा चन्द्रसिंह जी वोथरा आदि बन्धुओ की देख-रेख मे एक स्थायी सभा भवन का निर्माण हुआ है जो स्व० श्री डागा की भावनाओ का मूर्तरूप है।

इस वर्ष आचार्य श्री १००८ नानालाल जी महाराज का चातुर्मास वडी धूम-धाम से उत्साह और उल्लास से सम्पन्न हुआ। मास खमरण, अट्ठाइया आदि का वाहुल्य रहा—ऐसा प्रतीत होता था, मानो सम्पूर्ण समाज तप और त्याग की सरिता मे मज्जन कर जन्म-जन्म के कर्म मल को धो रहा हो। अखिल भारतीय साधु मार्गी जैन सघ का वृहत् सम्मेलन भी इसी वर्ष जयपुर मे आयोजित किया गया था। सम्मेलन के अवसर पर भगवत दीक्षा के सानन्द समापन की दिशा मे श्री सघ ने एक उप-समिति का गठन किया। श्री सरदारमलजी ढड्ढा ने उक्त सम्मेलन की कार्यवाही को वहुत सुन्दर और सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न कराने मे अपना सामयिक योग दिया। राजस्थान के तत्कालीन मुख्य मत्री श्री सुखाडिया द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। देश के कोने-कोने से श्रावक और श्राविकाए आये और धर्म की प्रभावना का वडा ठाठ रहा।

इसके आगे वर्ष मे आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म०, उनके सहयोगी सत तथा महासती श्री जसकु वर जी महाराज का चातुर्मास एक अर्थ मे ऐतिहासिक घटना थी। इस वर्ष १८१ अठाइया तथा कितने ही मास खमणो का आयोजन किया गया। मदिर मार्गी तथा खरतरगच्छ वाले सव वन्धुओ को आचार्य ने प्रत्याख्यान कराया। आपके उपरान्त महासती कौशल्या जी तथा टीपूकवर जी दोनो महाराज सा० का चातुर्मास हुआ है। आदरणीय श्री महासती कौशल्या जी तथा श्री टीपूकवर जी की प्रेरणा से श्रीमती इचरज कंवर लुणावत १६५ दिन की अभूतपूर्व अनशन तपस्या कर रही हैं—तपस्विनी वहन ने कहा है—"जब तक मैं आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म० सा० के दर्शन न कर लू गी, पारणा नही करू गी। श्री सघ की प्रार्थना तथा आग्रह को स्वीकार कर महाराज श्री ने जयपुर की ओर पधारने के भाव भी प्रकट किये। कार्यकारिणी समिति के निर्णय तथा आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी महाराज के जयपुर पधारने के आश्वासन पर दिनाक २२-१२-७४ को श्री सघ की ओर से श्रीमती लुणावत का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है। इस समारोह के मुख्य अतिथि माननीय श्री जगजीवनराम जी, खाद्य मत्री, भारत सरकार होंगे तथा इसी पावन अवसर पर केन्द्रीय राज्य मत्री श्री अनन्तप्रसाद शर्मा भी पधार रहे हैं।

महासती कौशल्या जी म० सा० इस ऐतिहासिक तपस्या के अवसर पर जयपुर में ही निवास करने की भावना कर रही है। उनके प्रयत्नों तथा भावनाओ के कारण समाज की नई पीढी को एक नई दिशा मिली है। ○

चतुर्थ खण्ड

श्री संघ की

विविध प्रवृत्तियाँ

एवं

उन्नायक श्रावक

शान्ति नही तब तक जब तक, सुख-भाग न नर का स

नही किसी को बहुत अधिक हो, नही किसी को क

हे परम तपस्विनि !

श्री शशिकान्त झा, शास्त्री

हे परम तपस्विनि ! तप तेरा, निज को प्रभु पद मे मिला दिया ।
जो बड़े-बड़े तपवीर यहा, उनके मानस को हिला दिया ।।

— १ —

रट अन्न-अन्न की लगी हुई, जिस पर दुनिया यह तरस रही ।
है अन्न हेतु इस जगती मे, क्रोधाग्नि चतुर्दिक बरस रही ।।
कलियुग में प्राण अन्नगत हैं, यह निश्चय मन से भगा दिया ।
हे परम तपस्विनि ! .. ..

— २ —

दुर्लभ ऐसी आत्मा होती, जो अन्न विरह है सह सकती ।
रोते-रोते भी जिसे सहन, इस जगती मे महगी पड़ती ।।
प्रभु दर्शित पथ का तप कैसा ? पालन कर सबको सिखा दिया ।
हे परम तपस्विनि ! .. ..

— ३ —

होती न भूख यदि इस जग मे, निश्चय सब चलते प्रभु मग मे ।
पर, भूख-ज्वाल का सहन कठिन, सबने माना है इस भव मे ।।
उस परम कठिन तप को तुमने, हे देवि ! शान्ति से सहन किया ।
हे परम तपस्विनि ! ... .. ,

— ४ —

सहते जन भूख विवश होकर, रो-रो कर और विकल होकर ।
तुमने है सहा धैर्यपूर्वक, हंस-हंस कर तथा मुदित होकर ।।
मरते हैं अन्न बिना मानव, मन का यह संशय मिटा दिया ।
हे परम तपस्विनि ! ... .

— ५ —

तप का इतिहास तुम्हारा यह, पालन करना जग मे दुस्सह ।
लेकिन मानस को बना सुदृढ़, सह लिया इसे जो रहा असह ।।
सुनकर विश्वास न हो जिस पर, वह करके तुमने दिखा दिया ।
हे परम तपस्विनि ! ....



रच लिए हमने भगवान

—ओम् पुरोहित

लडती है गीता से बाइबिल, और पुराणों से कुरान।
अपनी सुविधा के खातिर कई, रच लिए हमने भगवान ।।

मर्म धर्म का नहीं समझते, नहीं विचार अपने एक,
एक धर्म के ही बना लिए हैं, आज हमने धर्म अनेक।
तैर रहे हैं सिर्फ सतह पर, तह तक नही पहुच पाते,
अलग-अलग ढपली पर अपनी, राग अनूठे सब गाते ।।

करके टुकडे, कई धर्म के, पहुंचाया उसे रसातल।
ऊपर से दावा करते, किया धर्म का है उत्थान ।।

एक दूसरे की नजरो मे, बने हुए हम सभी विधर्मी,
अपने अपने ही धर्मो को स्थापित करने की हठधर्मी।
एक वृक्ष की शाखाओ को, काट-काट कर हमने रोपा,
एक दूसरे पर उनको ही, वृक्ष बना कर हमने थोपा ।।

पडा हुआ है कितना मोटा, भ्रम का पर्दा आखो पर।
अपनी-अपनी सीमा गढते, तान-तान कर नए वितान ।।



—जैन जगत : विशेषांक से

लाल-भवन

धर्म अमृत है, प्रकाश है,

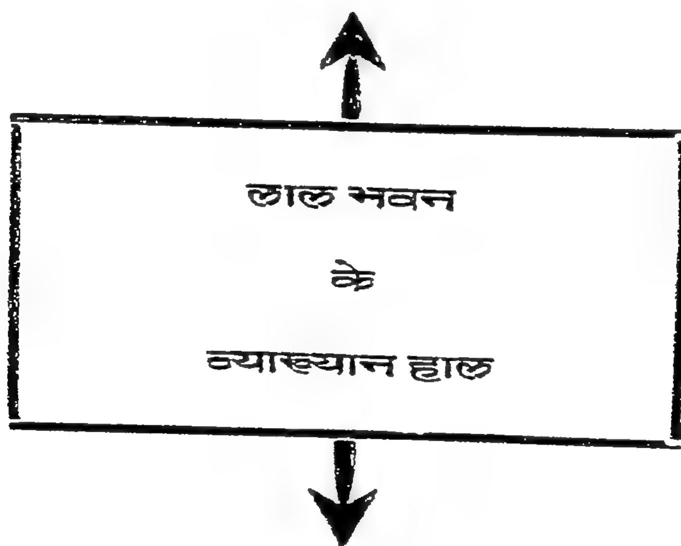
धर्मान्धता जहर है, अन्धकार है।

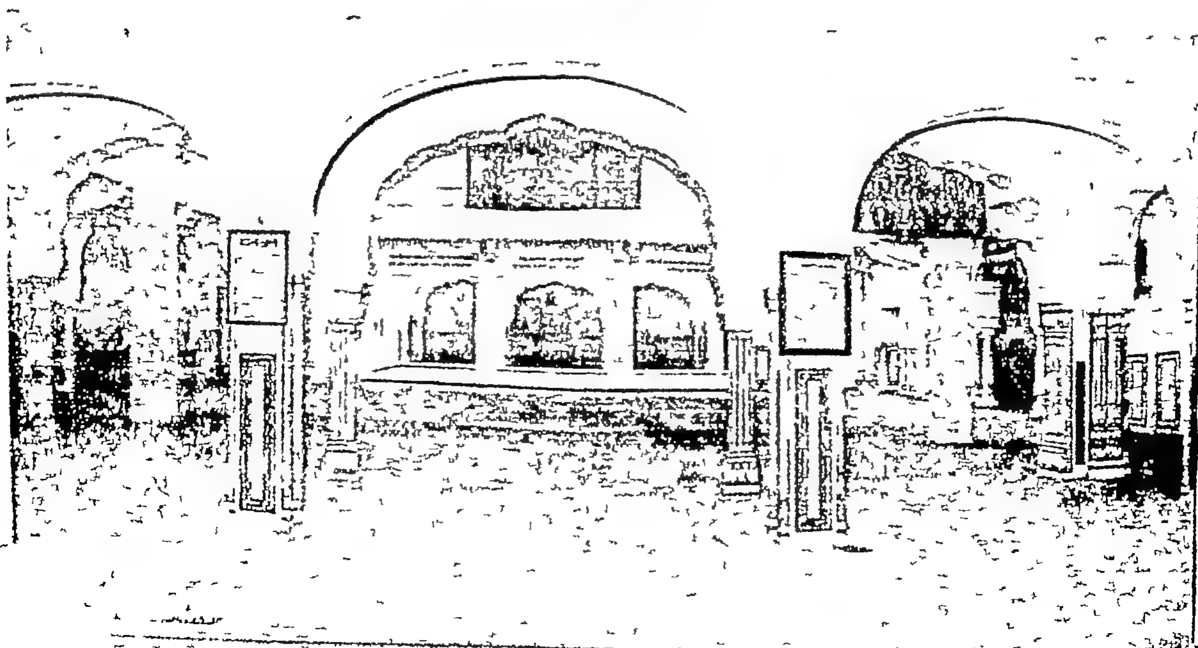


सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का केन्द्र :

लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

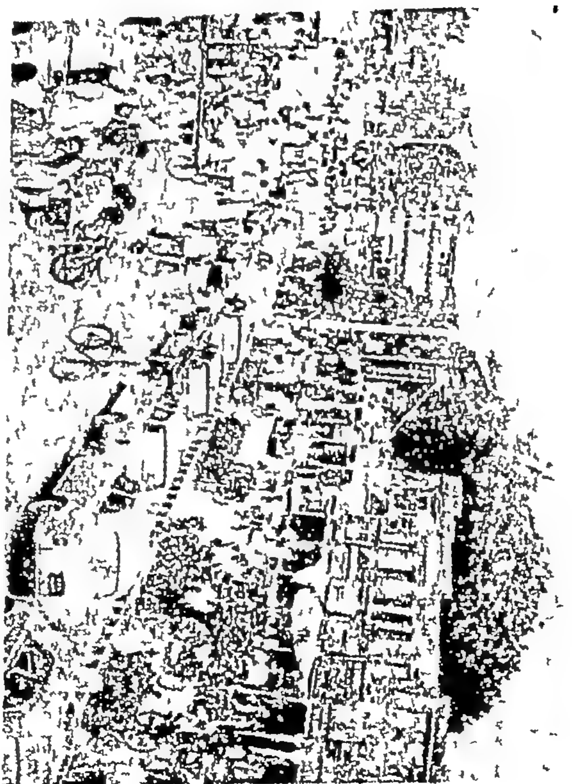



लाल भवन
के
व्याख्यान हाल

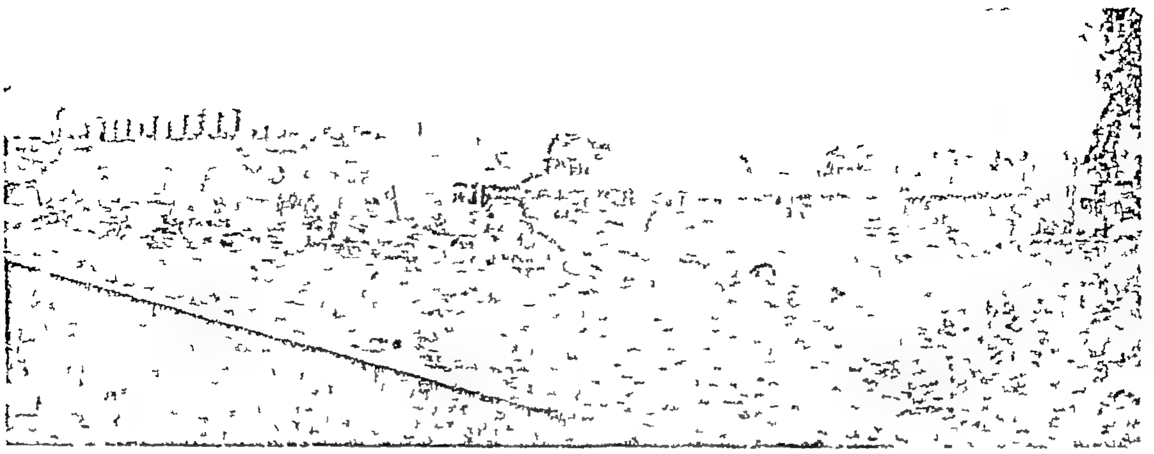


सत्र १९७३-७४ में १८१ तपस्याओं का सामूहिक जुलूस एवं प्रत्याख्यान.

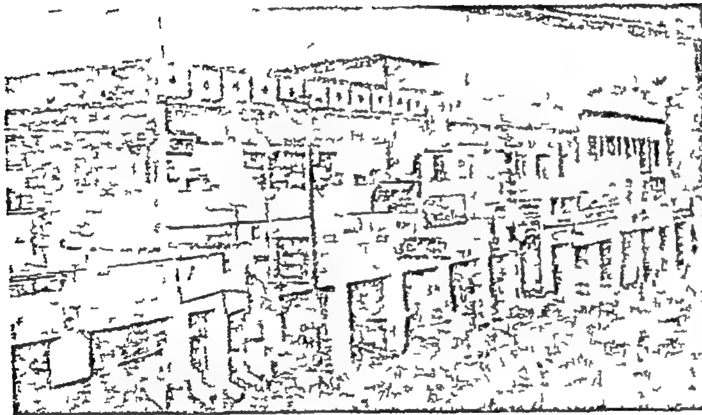








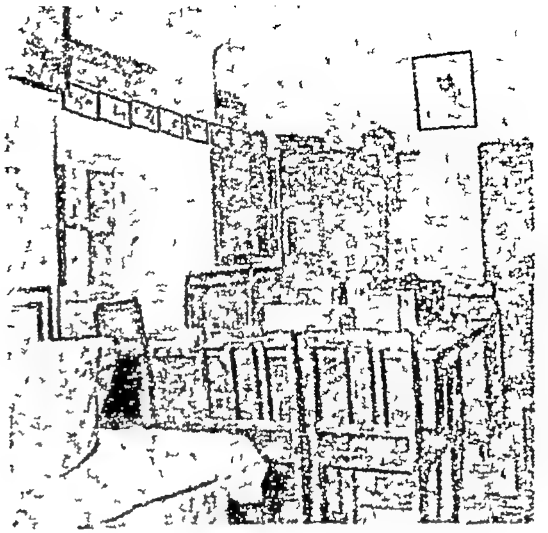
निर्माणाधीन श्री सुबोध महाविद्यालय



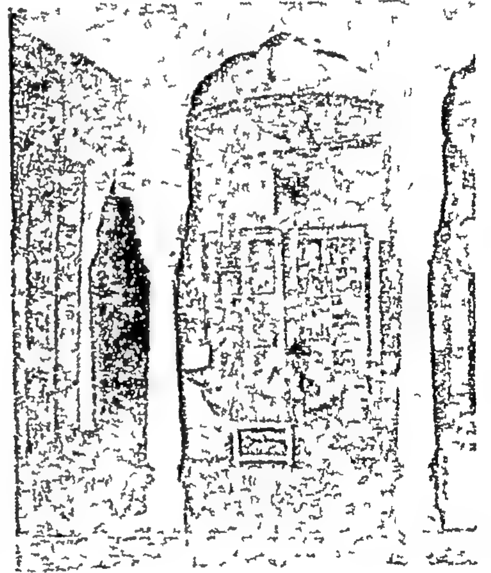
सांगानेरी गेट
स्थित
विद्यालय
एवं
महाविद्यालय
भवन



उपाश्रय गृह
(बारह गणगौर)



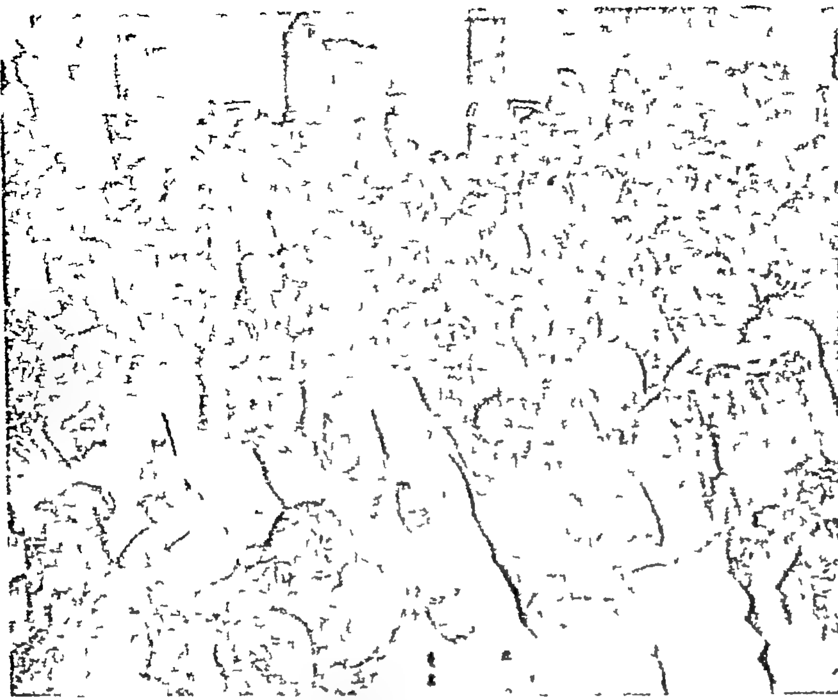
श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार-
शोध संस्थान
लाल भवन, जयपुर



श्री शांति जैन
पुस्तकालय
लाल भवन, जयपुर



अमर भवन
श्री अमर जैन मेडिकल
रिलीफ सोसाइटी
चौड़ा रास्ता, जयपुर



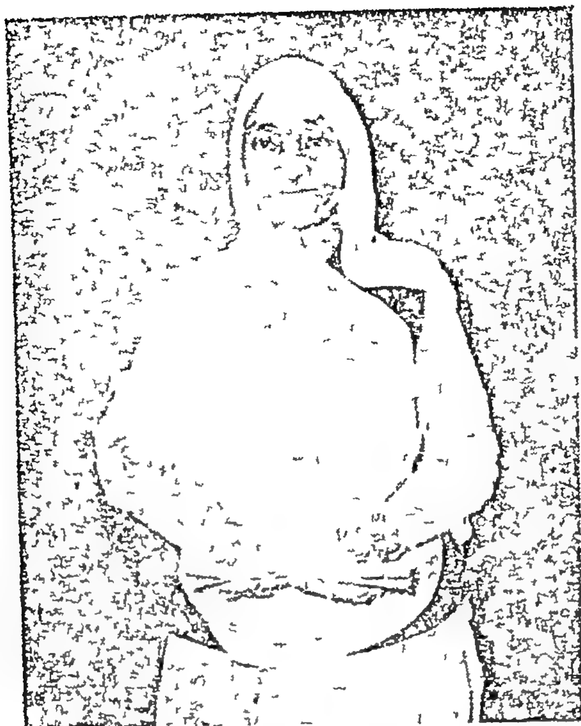
सामूहिक तपस्या समारोह
का एक दृश्य



श्री जैन श्वे० स्थानकवासी
सुबोध कन्या
माध्यमिक विद्यालय,
जयपुर

• संस्थापित १६१८ •

प्रशंसनीय



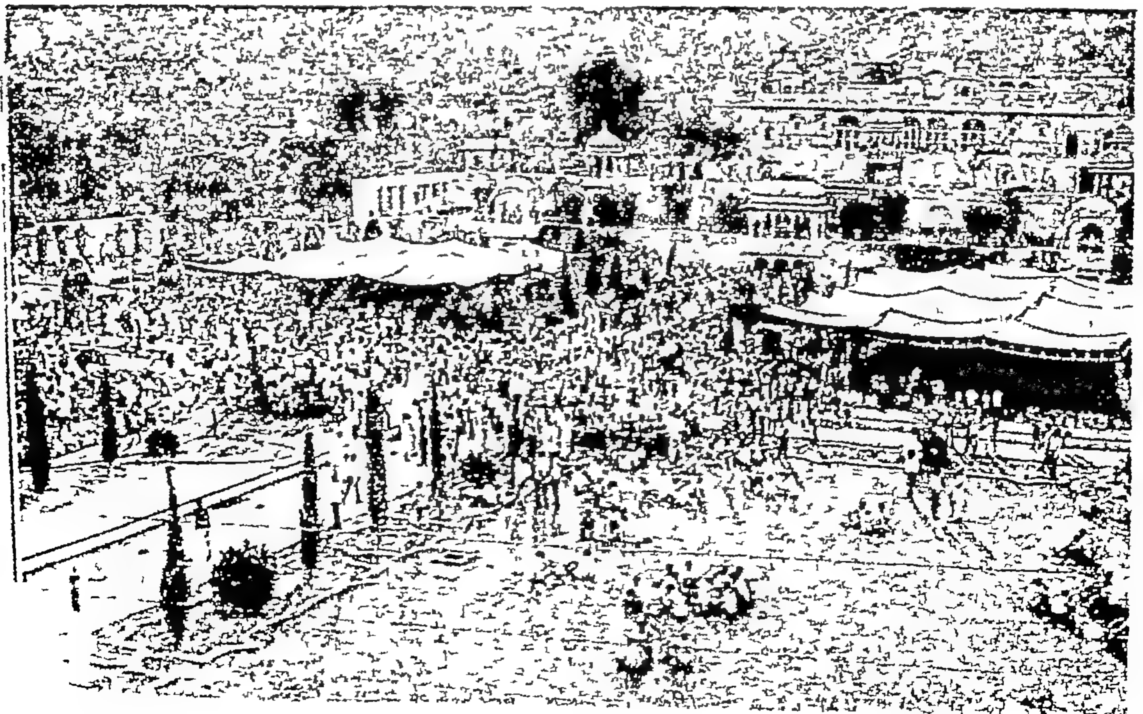
अनुकरणीय

श्रीमती सूरजबाई ललवानी

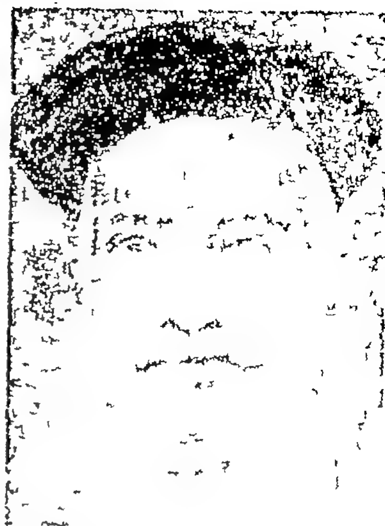
द्वारा गोपालजी के रास्ते स्थित "सूरज भवन" को वसीयत स्वरूप श्री संघ को प्रदत्त

गोष्ठी एवं सम्मेलन

सिसोदिया रानी के महलो मे आयोजित समाज की एकता का प्रतीक सामूहिक सहभोज एव वृहद् सम्मेलन.



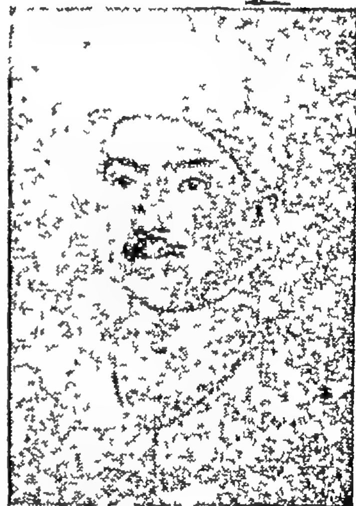
स्व० श्री मुन्नीलाल सुकलेचा



श्री मुन्नीलालजी सुकलेचा भूतपूर्व जयपुर राज्य के राजकीय जौहरियो मे थे । आप स्व० श्री छोटेलालजी सुकलेचा के सुपुत्र थे आपका जन्म २४-१-१८८७ को हुआ था । भूतपूर्व जयपुर राज्य के दरबार मे आपको कुर्सी प्राप्त थी । श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के सस्थापको मे आप का नाम शीर्षस्थ है । विचार के धनी, बात के पक्के तथा निर्णय के प्रति निष्ठावान थे । आपकी करनी और कथनी मे साम्यता थी । आपके ही सद्-प्रयत्नो से लाल-भवन का वर्तमान स्थानक श्रीमती लालकुवर धर्म पत्नी श्री फूलचन्दजी सुकलेचा से उपलब्ध हुआ ।

श्री सुकलेचा ने १९३५ से १९४३ तक श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के अध्यक्ष को सुशोभित किया ।

स्व० श्री मूलचन्द्र कोठ्यारी



स्व० श्री मूलचन्द्रजी सुपुत्र श्री चुन्नीलालजी भैया कोठ्यारी, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के सस्थापको मे से एक थे । आपने वर्षो तक श्री सघ के मत्रीत्व के कार्यभार को सभालते हुए, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे जो सेवाये की हैं वे वस्तुत श्लाघनीय है । शिक्षा के क्षेत्र मे आप का दृष्टि-कोण विशाल और व्यापक था । आप कहा करते थे शिक्षा जीवन की निर्मात्री है समाज के शिशुओ मे धार्मिक, सामाजिक सुसस्कार डालने के लिये समुचित शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिये । श्री सुबोध महाविद्यालय के प्रारम्भिक स्वरूप के निर्माण मे श्री कोठ्यारी का योगदान सराहनीय रहा है । वे कुशल व्यवसायी, और धुन के पक्के मानव थे ।

स्व० श्री भंवरमल मूसल



पुरानी पीढी के लोगो मे श्री भवरलालजी मूसल वास्तव मे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के श्रावक थे । कन्या शिक्षा के प्रति आपका अनन्य अनुराग था । श्री सुबोध बालिका विद्यालय उनकी इसी अभिरुचि का परिचायक है । श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के मत्री पद पर कार्य करते हुए आपने जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया वह नि सदेह आपके युगानुकूल विचार धारा का द्योतक है ।

धार्मिक वृत्ति के निष्ठावान श्रावक ही नही थे अपितु शास्त्रो के ज्ञाता और चिन्तक भी थे—आपने १९४० से १९४७ तक मत्री पद पर कार्य किया ।



स्व० श्री केसरीमल चोरडिया

जयपुर के स्थानकवासी जैन समाज मे ही नही अपितु बहुमूल्य पाषाणो के व्यवसायिक क्षेत्र मे चोरडिया परिवार विशिष्ट स्थान रखता है। स्व० श्री केसरीमलजी चोरडिया स्व० श्री जेठमलजी चोरडिया के सुपुत्र थे। आप सरल, श्रद्धालु, धार्मिक निष्ठा के श्रावक थे। हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनो भाषाओ पर आपका अच्छा अधिकार था। धर्म तथा शास्त्रो का निरन्तर पारायण करते थे। समय समय पर आचार्य श्री तथा सन्तो से शका समाधान भी किया करते थे। जवाहरात व्यवसाय मे आप अपनी सच्चाई, ईमानदारी तथा यथार्थता के लिये विख्यात थे। स्व० श्री स्वरुपचद चोरडिया आपके कनिष्ठ पुत्र थे। जिन्होने अपने पैतृक व्यवसाय को व्यापक बनाकर कीर्ति अर्जित की।



स्व० श्री दुर्लभजी त्रिभुवन

स्व० दुर्लभजी त्रिभुवन जयपुर के जवाहरात व्यवसायिओ मे शीर्षस्थ थे। आप धर्मानुरागी, श्रद्धावान, सेवाव्रत के धारक श्रावक थे। आपने जैन ट्रेनिंग कालेज व्यावर मे गुरुकुल की स्थापना तथा जयपुर मे श्री सुबोध उ० मा० विद्यालय के विकास तथा विस्तार मे अपना अनुकरणीय योग दिया। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर की का. का समिति के वर्षों तक सम्मानित सदस्य रहते हुए जो त्याग और सेवा का उदाहरण प्रस्तुत किया वह प्रेरणाप्रद है। जैन कान्फ्रेन्स की स्थापना तथा साधू सम्मेलन आमत्रित करने मे श्री दुर्लभजी का सहयोग और सरक्षण वरदान सिद्ध हुआ।

श्री केसरीचन्द कोठारी लाल हाथी वाले

जो परिवार लाल हाथी वालो के नाम से समाज मे जाना जाता हो सोच लीजिये उस परिवार का वैभव और श्री सम्पन्नता का कैसा स्वरुप होगा। श्री केसरीचन्दजी कोठारी उस ही परिवार के एक कीर्तिवान, समाज सेवी व्यक्ति थे। आप सन्त मुनिराजो के सेवा रत श्रद्धावान श्रावक थे। यौवन के प्रभाव से ही व्यवसायिक कौशल का प्रभाव इतना बढा-चढा था कि व्यापारिक क्षेत्र मे आपकी साख यथार्थ साख थी। श्रम से श्री वृद्धि उपलब्ध करने वाले जीवट के आदमी थे। जीवन के तीसरे पहर मे घर गृहस्थी का समस्त भार अपने सुपुत्र श्री घासीलालजी को सम्भलवाकर त्याग-व्रत ग्रहण कर लिया था।

श्री कन्हैयालाल डागा



जन्म जेष्ठ वुदि स० १६३० निर्वाण फाल्गुन शुक्ला ७ स २०१६ पुरानी पीढी के यशस्वी समाज सेवी, धार्मिक वृत्ति के निष्ठावान श्रावकों मे श्री कन्हैयालालजी डागा का नाम बडे सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की का का समिति के सम्मानित सदस्य रहते हुए जो सेवा का उदाहरण प्रस्तुत किया, वह निस्सन्देह अनुकरणीय था अपनी छोटी बहन श्रीमती छोटाबाई से लगभग ११००० की सम्पत्ति का समाज को समर्पण कराने मे योग देना, श्लाघनीय था। ज्ञान प्रकाश भवन के निर्माण कार्य मे भी आपका सराहनीय योग रहा है।

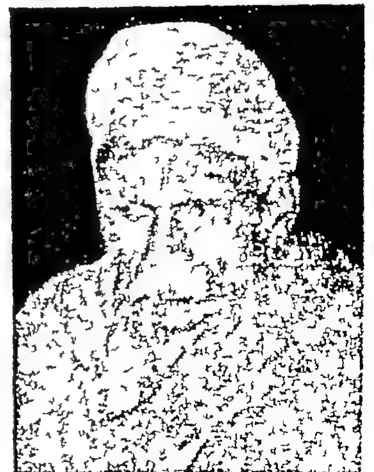
श्री गुलावचन्द वोथरा



'जहा अहिंसा है, मैत्री है, करुणा है, दया है, स्नेह है, सौहार्द है और सद्भावनायें हैं-वही शान्ति और सुख का प्रादुर्भाव होता है। श्री गुलावचन्द्र- वोथरा का समग्र जीवन क्रम इन्हीं विचारो से ओत-प्रोत है। श्री वोथरा १६६५ से १६७१ तक श्री सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है।

श्री वोथरा शान्त प्रकृति, धार्मिक वृत्ति तथा सहज स्वभाव वाले व्यक्ति है। आपने वर्षो तक श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर के मत्री के रूप मे सेवायें दी है। आपका श्री सघ द्वारा अमूल्य सेवाओ के उपलक्ष मे अभिनन्दन भी किया गया है। आप सुबोध विद्यालय के कई वर्षों तक मत्री रह चुके है।

श्री रतनचन्द्र नवलखा



नवलखा परिवार जयपुर स्थानकवासी समाज मे अपने कार्य कलापो के लिये सदा से विख्यात रहा है। वैसे भी नवलखा परिवार धार्मिक सामाजिक किंवा राजनैतिक सब ही क्षेत्रों मे अपनी सेवायें देता रहा है—श्री रतनचन्द नवलखा श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की स्थापना के साथ, सघ की गतिविधियो मे निरन्तर योग देते रहे थे—विशेषकर भवन निर्माण कार्य मे तो आपकी सूझबूझ निराली ही थी। श्री ज्ञान प्रकाश के वर्तमान भवन के विस्तार तथा निर्माण कार्य मे आपने अपेक्षित योग दिया। सात्विक वृत्ति के सरल स्वभाव के गम्भीर व्यक्ति थे। गम्भीरता उनके रोम रोम मे समाई हुई थी।



श्री श्रीचन्द्र गोलेछा

श्री श्रीचन्द गोलेछा की गणना भारत के उन इने-गिन रत्न पारखियो मे की जाती है जिन्होने अपने भुज-बल, पराक्रम तथा निष्ठा से यश और कीर्ति का वरण किया है।

रत्न-पारखी होने के अतिरिक्त आपकी व्यावसायिक, शैक्षणिक धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र की अनुभूतिया भी परिस्कृत और परिमार्जित हैं। सेवा की मूक भावना आडम्बर विहीन जीवन, सात्विकता तथा सौम्यता की श्री गोलेछा प्रतिकृति हैं।

श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर तथा श्री सुबोध महाविद्यालय को वर्षो तक आप मन्त्री के रूप मे सेवायें दे चुके है। सोसाइटी के आप प्रथम मन्त्री रह चुके हैं। वर्तमान मे आप श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार का निर्देशक के रूप मे कार्य सम्भाल रहे हैं।



श्री स्वरूपचन्द्र चोरडिया

स्व० श्री स्वरूपचन्द्रजी चोरडिया सुपुत्र श्री केसरीचन्द्रजी चोरडिया जयपुर स्थानकवासी जैन समाज के गणमान्य व्यक्ति थे। निर्भीकता, स्पष्टवादिता और विशाल हृदयता उनकी विशेषता थी। आप श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर के कई वर्षों तक कोषाध्यक्ष पद पर रह कर जो कार्य किया वह आपकी दूरदर्शिता तथा कार्य तत्परता का अनूठा उदाहरण है। आपके नाम पर श्री स्वरूपचन्द चोरडिया प्रसूति गृह राजस्थान की राजधानी के एक महत्ती आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है। श्री अमर जैन मेडिकल सोसाइटी के निर्माताओ से आप एक सशक्त जीवट के धनी थे। शिक्षा के क्षेत्र मे भी आपका योगदान अनुकरणीय रहा है। श्री सुबोध महाविद्यालय के नूतन भवन का भूखण्ड दिलाने मे आपका योगदान सर्वोपरी रहा है।



श्री मोतीचन्द्र हीरावत

श्री मोतीचन्द्रजी हीरावत स्थानकवासी समाज के इने-गिने व्यक्तियो मे से थे, जो साहसी निर्भीक तथा व्यापक दृष्टिकोण को लेकर चलते थे। आपकी गिनती जयपुर के अच्छे जवाहरात पारखियो मे की जाती थी—धार्मिक वृत्ति के निष्ठावान श्रावक थे। समाज सेवा आपके जीवन का एक प्रकार से व्रत सा बन गया था। मधुर स्वभाव, विशाल हृदय तथा सहयोग की भावना आपके जीवन के विशिष्ट गुण थे। विदेश यात्रा पर जाने वाले आप प्रथम श्रावक थे।

स्व० श्री रतनचन्द्र सुकलेचा



स्व० श्री सुकलेचा धार्मिक श्रद्धा के निष्ठावान श्रावक थे। आपने श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के अध्यक्ष पद पर अपनी अमूल्य सेवाये दी। श्री सुकलेचा जैन शास्त्रो के अच्छे ज्ञाता थे।

श्री सुमेरचन्द कोठ्यारी



श्री सुमेरचन्दजी कोठ्यारी राजस्थान की राजधानी के विख्यात व्यवसायी स्व० श्री चादमलजी कोठ्यारी के सुपुत्र है। यथा नाम तथा गुण वाली कहावत आपके जीवन मे अक्षरः उतरती है। सुमेर के सदृश्य विशाल और व्यापक दृष्टिकोण वाले सुधारवादी विचारक हैं। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के एक दशक से भी लम्बी अवधि तक अध्यक्ष पद पर रहकर जिस दूरदर्शिता, कार्यदक्षता और गम्भीरता का परिचय दिया है वह निश्चय ही इस विश्वास की पुष्टि करता है कि विश्वास और निष्ठा से कार्य करने वालो के मार्ग सदा साफ रहते हैं। आप आइस मैन्यूफैक्चरिंग एसोसिएशन जयपुर तथा जिला लघु उद्योग एसोसिएशन के अध्यक्ष रहे हैं। श्री कोठ्यारी सन १९४७ से १९६२ तक श्री सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है।

श्री पूनमचन्द्र बडेर



श्री पूनमचन्द्र बडेर का जन्म श्री हजारीमल बडेर के यहा हुआ। आपका जीवन सरलता, सादगी एव निश्चलता से ओत-प्रोत है। धार्मिक भावना आपके जीवन का अग है। व्यवसायिक जीवन से विमोहित होकर अधिकाश समय धार्मिक कार्यो मे व्यतीत करना श्री बडेर का अपनापन है। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ की कार्यकारिणी समिति तथा सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल के कोषाध्यक्ष पद का निर्वाहन गत कई वर्षो तक करते रहे हैं। आप एक कुशल बहुमुल्य पाषाणो के पारखी ही नही वरन् साधु सतो की सेवा करने मे अग्रणी भी हैं।

श्री शान्ति भाई दुर्लभजी

जयपुर का राजनैतिक जीवन श्री शान्ति भाई दुर्लभजी के सेवाग्रो से पूर्णत अनुप्राणित है। आप श्री दुर्लभजी त्रिभुवन के द्वितीय सुपुत्र हैं। राजनैतिक क्षेत्र मे विशेष रूप से आपका क्षेत्र रहा है। जवाहरात व्यवसाय आपका पैतृक व्यवसाय है। आप कुछ समय से ग्रस्वस्थ रहते हैं। ग्रस्वस्थ रहते हुये भी देश की प्रगति के लिये आप सदैव चिन्तन, मनन और अध्ययन करते रहते हैं। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के अध्यक्ष पद पर रहते हुये जो सेवायें दी है, वह वस्तुत प्रशसनीय है। आप १९६३ से १९६५ तक श्री सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं।

श्री मोहनलाल नवलखा

श्री मोहनलाल नवलखा एक सात्विक वृत्ति के सरल व्यक्ति हैं। निरन्तर समाज के लिये कुछ न कुछ करते रहना तथा दूसरो के मार्ग दर्शक देना आपकी स्वभावगत रुचि बन गई है। शान शौकत से दूर सात्विक जीवनयापन करना आपकी विशिष्टता है। रत्नो के कुशल व्यवसायी तथा पारखी हैं आप १९६३ से ६५ तक मत्री पद पर कार्य कर चुके हैं।

स्व० श्री प्रेमचन्दजी लोढा

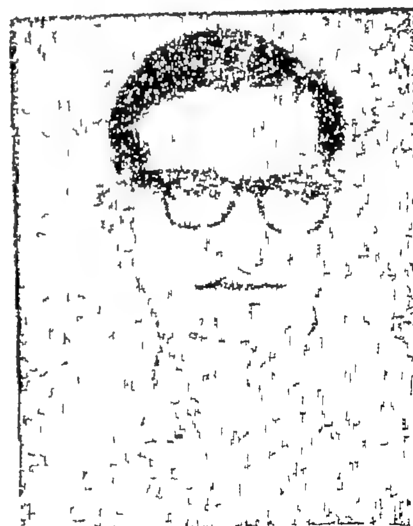
श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के विकास और विस्तार मे श्री प्रेमचन्द्रजी लोढा का नाम बडे सम्मान के साथ लिया जावेगा। अपने श्रम और स्वावलम्बन से यश और कीर्ति अर्जित करने वाले प्रतिष्ठावान श्रावक थे। आप सुलझे मस्तिष्क व बहुमूल्य पाषाणो के पारखी थे। श्री लोढा श्री सघ के एक अर्थ मे स्तम्भ थे। श्री सुबोध महाविद्यालय की गतिविधियो मे स्व० लोढा का विशेष योगदान रहा है।

श्री केसरीचन्द कोठारी



स्व० श्री केसरीचन्दजी कोठारी शान्त, धीर और मधुर प्रकृति के मानव थे। आप एक कुशल व्यवसायी ही नही थे, अपितु धार्मिक वृत्ति के समाज सेवी भी थे। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की गतिविधियो मे विशेषकर धार्मिक रात्रि पाठशाला तथा जीव-दया कबूतर खाने के विकास तथा विस्तार मे आपका प्रशसनीय योग रहा है।

श्री सागरमल डागा



श्री डागा धुन के पक्के और निश्चय के दृढ मानव थे। श्री अमर जैन मेडिकल सोसाइटी के निर्माण और विकास मे आपका सर्वोपरि योगदान रहा। वात के धनी, विरोधी वातावरण मे सजग प्रहरी के तुल्य रहने वाले सागर सम गम्भीर व्यक्ति थे। समाज के युवको को व्यवसायिक कौशल मे दक्ष करना आपका रुचिकर दैनिक क्रम था। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया वह आपकी व्यवहार कुशलता तथा कर्त्तव्य-निष्ठा का प्रवल प्रमाण है।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के शब्दो मे "पिछले कुछ वर्षो से श्री डागा ने जयपुर श्री सघ को अध्यक्ष के रूप मे जो नेतृत्व दिया वह एक ऐतिहासिक तथ्य वन गया है उनके सफल नेतृत्व मे तीन महामुनियो के लगातार चातुर्मास इस वात के साक्षी है।" श्री अमर मेडिकल रिलीफ सोसाइटी के तो वे प्राण ही थे। आप १९७१ से अक्टूबर १९७४ तक सघ के अध्यक्ष रहे।



श्री गनपतलाल कोठारी

आप स्वर्गीय श्री गुलाबचन्दजी कोठारी के सुपुत्र है। एक सफल व्यवसायी होने के अतिरिक्त, समाज सेवा की भावना का भी आपके जीवन मे अ कुरण हुआ है।

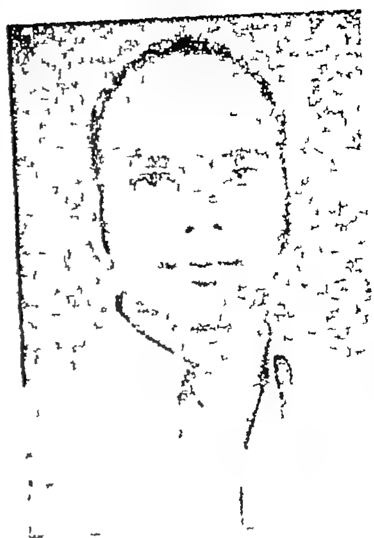
स्व० पिता श्री गुलाबचन्दजी कोठारी की शिक्षा के क्षेत्र मे अनुकरणीय सेवायें रही हैं जिनका जीवन समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत था। वर्तमान मे आप श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के कार्यवाहक अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।



श्री सरदारमल चोपडा

पुरानी परम्परा का निर्वाहन करने वालो मे श्री सरदारमल चोपडा अपनी वेष-भूषा तथा सात्विक वृत्ति तथा सरल स्वभाव के लिये चिरपरिचित हैं। आपको जीवन के सभी दृश्यो का खासा अनुभव है। श्रम से समृद्धि करने वाले श्री चोपडा का समग्र जीवन सरलता, सात्विकता तथा निष्ठा का प्रतीक है। आप वर्तमान मे श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के अवैतनिक मत्री के पद को सुशोभित कर रहे हैं। स्थानक मे स्थाई सभा भवन का निर्माण करवाने तथा श्रीमती ललवानी को प्रेरणा दिलाकर उनसे गोपालजी के रास्ते मे स्थित भवन श्री सघ को समर्पण कराने मे आपका प्रशसनीय योग रहा है। श्री चोपडा नूतन तथा पुरातन विचार धारा की कडी हैं।

श्री कैलाशचन्द्र हीरावत



मनुष्य को मनुष्य से जोडने वाली कडी को ही धर्म कहा जाता है और इनको परस्पर मिलाने वाली मूल भावनाये हैं–सत्य, प्रेम और करुणा। श्री कैलाशचन्द्र हीरावत इसही निष्ठा और आस्था के युवक है। आप श्री केवलचदजी हीरावत के ज्येष्ठ पुत्र हैं—जवाहरात व्यवसाय आपका पैतृक व्यवसाय है।

श्री रतनचन्द्र कोठारी



"धर्म ने तो मनुष्य को सदा एकता ही सिखाई है, कभी अनेकता नही। जो धर्म अनेकता सिखाता है वह धर्म नही" श्री रतनचन्द्र कोठारी इस ही विचारधारा के युवक है आपने साधारण स्थिति मे अपने स्वय के श्रम और बल पर अपनी प्रतिष्ठा अर्जित की है—कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाणिज्य के स्नातक हैं—जवाहरात व्यवसाय आपका पैतृक व्यवसाय है। पुरानी परम्पराओ तथा रीति–रिवाजो मे युगानुकूल परिवर्तन लाने के हामी है। सादा जीवन और उच्च विचार श्री कोठारी के जीवन की स्वाभाविकता है—

श्री सरदारमल ढड्ढा



जीवन मे वह व्यक्ति निश्चित ही सफल होता है जो अटूट आस्था, विश्वास और निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है। श्री सरदारमलजी ढड्ढा का जीवन इसी अटूट विश्वास का प्रतीक है।

आपका जन्म १४ सितम्बर १९२० को श्री गणेशमलजी ढड्ढा के यहाँ हुआ। आपको जयपुर के प्रतिष्ठित एव कुशल जौहरियो मे गिना जाता है। धार्मिक, सामाजिक एव व्यावसायिक क्षेत्रो मे आपकी अच्छी अभिरुचि है। आप अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन श्रावक सघ के उपाध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, जयपुर की कार्यकारिणी के आप, गत कई वर्षों से सक्रिय सदस्य है। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी के विकास मे आपका पूर्ण सहयोग रहा है।



श्री बालचन्द्र वैद्य

श्री बालचन्द्र वैद्य राजस्थान शिक्षा जगत के एक शिक्षक–प्रशासक के रुप मे जितने विख्यात हैं उतने ही आप अपनी गहन चिन्तन पूर्ण रचनाओ के लिए भी प्रसिद्ध हैं। अनेको हिन्दी पाठ्य पुस्तको का सकलन आपकी इस वृत्ति का प्रतीक है। श्री सुबोध महाविद्यालय को एक प्राथमिक शाला मे स्नातक स्तर तक क्रमोन्नत करने मे आपका अनूठा योगदान रहा है। श्री वैद्य राजनैतिक क्षेत्र मे भी उतने ही चिरपरिचित हैं। प्रस्तुत लेख "श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर पर विहगम दृष्टि" आपकी अमूल्य कृति है। उक्त लेख मे आपने सघ की स्थापना से आज तक का शृ खलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है। आप राजस्थान माध्यमिक शिक्षा मडल के कई वर्षो तक सदस्य भी रहे हैं।



श्री गुमानमल चोरड़िया

श्रेष्ठता और पवित्रता का आधार मानव कर्म है। श्री गुमानमल चोरडिया का जीवन इसी भावना से पुष्पित और पल्लवित है। श्री वर्द्धमान जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर के आप १९६५ से १९७१ तक मत्री पद पर अपनी अमूल्य सेवाये दे चुके हैं। धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे आपकी सेवायें अनुकरणीय है। गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी आप जैनत्व के अनुरूप साधु जीवन विता रहे हैं। वर्तमान मे आप अखिल भारतवर्षीय साधु मार्गी सघ के सम्मानित अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।



श्री उगरसिंह बोथरा

साधारणत यह माना जाता है कि धर्म और अर्थ विरोधी वस्तु हैं। व्यापार आदि लौकिक व्यवहार मे धर्म नही बचाया जा सकता है। धर्म का उपयोग केवल मोक्ष के लिए होता है। धर्म की जगह धर्म शोभा देता है और अर्थ की जगह अर्थ। जो धर्म व्यवहार मे लाया जा सके वही धर्म है। श्री उगरसिह बोथरा का समग्र जीवन इस ही विश्वास तथा आस्था का प्रतीक है। श्री बोथरा स्वभाव से सरल सदैव प्रसन्न मुद्रा मे रहने वाले मानव हैं। धार्मिक वृत्ति के निष्ठावान श्रावक हैं। वर्तमान मे आप श्री सघ की का का के माननीय सदस्य हैं।

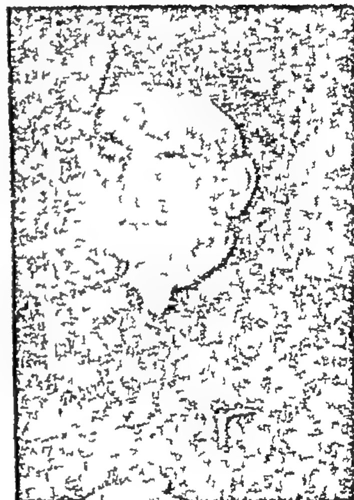
श्री भंवरलाल चोरड़िया



आपका जन्म २२ जून १९३० को ब्यावर निवासी श्री पारसमल चोरडिया के यहा हुआ। टैक्स सलाहकार सघ द्वारा सचालित मासिक टैक्स रिपोर्टर के सम्पादक मण्डल के प्रमुख सदस्य रह चुके हैं। टैक्स प्रेक्टिशनर्स एसोसिएशन के सदस्य भी हैं।

श्री चोरडिया सेवाभावी, उत्साही एव शान्त प्रकृति के व्यक्ति हैं। वर्तमान मे आप श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की कार्य-कारिणी समिति के मनोनीत सदस्य हैं।

श्री सौभागमल श्रीश्रीमाल



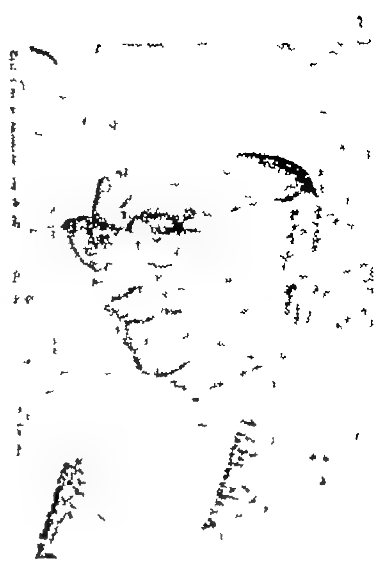
आप एक सफल लेखक तथा कुशल प्रशासक हैं। अभी गत कुछ वर्षो से आप राजकीय सेवाओ से मुक्त हुए है। राजस्थान सरकार द्वारा सम्मानित तथा पुरस्कृत होना अपने आप मे अभिनन्दनीय है। श्री सुबोध कन्या माध्यमिक विद्यालय को प्रारम्भिक अवस्था मे आपने अपनी अमूल्य सेवाओ से उपकृत किया है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा मडल के विविध उपसमिति के आप सदस्य भी रह चुके हैं। वर्तमान मे आप श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक-सघ के सदस्य हैं।

श्री जगमोहनलाल सुराणा



श्री जगमोहनलाल सुराणा जयपुर के बहुमूल्य पाषाण व्यवसायियो मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।। श्रम शीलता, व्यवसाय के प्रति निष्ठा आपकी विशेषता है। गत कई वर्षो मे श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ को आपकी सेवायें मिल रही हैं।

श्री विनयचन्द्र दुलभजी



स्व० श्री विनयचन्द्र भाई स्व० श्री दुर्लभजी त्रिभुवन के ज्येष्ठ पुत्र थे—आपका जन्म २५ फरवरी १६०१ मे हुआ था। स्व० श्री विनय भाई समाज सेवा के क्षेत्र मे एक सजग प्रहरी थे। सरल, सुन्दर सरस व्यक्तित्व के धनी स्व० विनयचन्द्रभाई, सिद्धातो पर सुमेरु के समान सुदृढ रहने वाले निष्ठावान श्रावक थे। श्री सुबोध महाविद्यालय के विकास और विस्तार मे आपका सराहनीय योग रहा है। हृदय से भावुक और बुद्धि से परम प्रवीण थे। श्री अ० भा० श्वे० जैन कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष पद पर रहते हुए जिस दूरदर्शिता और विशाल हृदयता का परिचय दिया था वह इस बात का प्रमाण है कि स्व० विनयचन्द्र भाई मे समन्वय की लालसा, शान्ति की कामना और प्रगति की उत्कण्ठा उनके रोम-रोम मे समा रही थी।

श्री खेलशकर दुर्लभजी

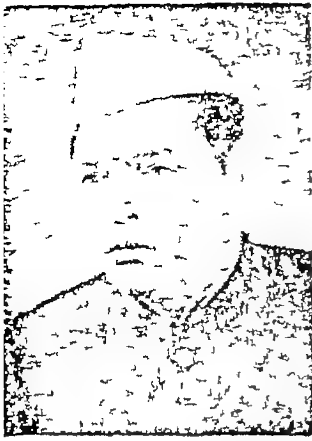


आपका जन्म दिनाक ११ मई, १६१२ को गुजरात के मोरवी राज्य मे हुआ। श्री दुर्लभजी त्रिभुवन के आप तृतीय पुत्र हैं। श्री खेलशकर दुर्लभजी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न है। आप गुजराती समाज, जयपुर के अध्यक्ष एव श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शिक्षा समिति के अध्यक्ष पद को वर्षों तक सुशोभित कर चुके है। आप सेवा भावी व्यक्ति हैं। आपने सन्तोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट स्थापित कर उसके अन्तर्गत डाइग्नोस्टिक क्लीनिक तथा चिकित्सालय का सचालन कर अपनी आतरिक भावना का मूर्तरूप दिया है। आप जेम्स एण्ड ज्वेलरी एक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। भारत सरकार द्वारा दि फर्स्ट नेशनल सर्टिफिकेट आफ मेरिट से आप सम्मानित है। तथा पद्मश्री के अलकरण से पुरस्कृत है।

श्री सिरहमल कोठारी



श्री सिरहमल कोठारी स्वभाव के सरल, गाधी विचार धारा के व्यक्ति हैं। आप वर्षों तक सुबोध बालिका विद्यालय तथा श्री सुबोध उ० मा० विद्यालय के मत्री पद पर अपनी सेवायें दे चुके हैं। कुशल व्यवसायी तथा सुलझे विचारो वाले व्यक्ति हैं।



श्री सिरहमल नवलखा

आपका जन्म श्रावण शुक्ला १ वि स १९७९ को श्री भूरामल नवलखा के यहा हुआ। स्व० श्री नवलखा स्वय एक साहसी कर्त्तव्यनिष्ठ एव कुशल व्यवसायी थे। वे बात के धनी और विश्वास के पक्के थे। श्री सिरहमल नवलखा के जीवन मे आज भी अपने स्वर्गीय पिताश्री के सभी गुण दृष्टिगोचर होते हैं। व्यापारिक क्षेत्र के अतिरिक्त आप सामाजिक कार्यों मे भी अच्छी रुचि लेते है। ज्वेलर्स एसोसिएशन के कई वर्षो तक आप अवैतनिक मत्री का कार्य कर चुके हैं। जयपुर नगर विकास न्यास के आप मनोनीत सदस्य भी रह चुके है। वर्तमान मे आप श्री स्थानकवासी शिक्षा समिति के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।



श्री सिरहमल बम्ब

मूक-सेवा की प्रवृत्ति श्री सिरहमल बम्ब के जीवन का अनुठापन है। आपका जन्म कातिक शुक्ला ७ सवत् १९८० को हुआ। इण्टर वाणिज्य तक अध्ययन करके आप जवाहरात व्यवसाय में प्रविष्ट हुये। श्री बम्ब का सामाजिक जीवन प्रभावपूर्ण है। नगरपालिका के निर्वाचित सदस्य के रूप मे आपकी सेवायें सराहनीय रही है। श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शिक्षा समिति के आप अवैतनिक मत्री हैं।



श्री नथमल गोलेछा

श्री नथमल गोलेछा मूलत बीकानेर के निवासी है। योग्य पिता के योग्य सन्तान वाली कहावत आपके जीवन मे अक्षरश उतरती है। आपके पिता श्री भी एक निष्ठावान उदारमना मानव थे। धर्म के प्रति अनन्य अनुराग उनके जीवन का विशिष्ट गुण था। महाविद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य श्री वैद्य ने आपकी तेजस्विता तथा योग्यता एव शिक्षा, शिक्षक तथा शिक्षार्थी के प्रति अनुराग देखकर आपको राजकीय सेवाओ से मुक्त कराकर श्री सुबोध महाविद्यालय मे प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया। वर्तमान मे आप आचार्य पद को सुशोभित कर रहे हैं। आपकी लगन तथा त्याग भावना से महाविद्यालय प्रगति की ओर उन्मुख है। स्वभाव मे सरल, हृदय मे स्पष्ट और वाणी मे मधुर श्री गोलेछा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व है।

श्री नथमल हीरावत



बुद्धि, भावना तथा क्रिया का समवेत स्वरूप ही श्री हीरावत का समग्र व्यक्तित्व है। श्री हीरावत जिनवाणी के प्रबंध सम्पादक का भार भी वहन कर चुके हैं। सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल के मन्त्री हैं। श्री सुबोध महाविद्यालय के कुछ समय तक अवैतनिक मन्त्री भी रह चुके है। आप कुशल रत्न व्यवसायी तथा उदार वृत्ति के व्यक्ति हैं।

सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र मे अर्पण करने की उत्कट भावनाओ से प्रेरित होकर, अल्पायु मे ही आपने व्यवसाय से निवृत्ति लेकर अपने जीवन को नया मोड दिया है। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के आप मन्त्री पद को सुशोभित कर चुके है।

श्री कन्हैयालाल अग्रवाल



जीवदया तथा कबूतर खाना, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ जयपुर की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। श्री अग्रवाल उक्त प्रवृत्ति की बडी सतर्कता तथा रुचि से सचालन कर रहे है। स्वभाव से सरल और दयावान मानव हैं।

श्री उदयचन्द्र कोठारी



आपका जन्म १० अगस्त १६३५ को श्री केसरीचन्द्रजी कोठारी के यहा हुआ। आपके पिताश्री स्वय धर्मपरायण और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे। व्यवसायिक क्षेत्र मे तो आपने सफलता प्राप्त की ही थी। साथ ही युवको मे धार्मिक सस्कार प्रतिष्ठित करने के लिये धार्मिक शिक्षण के प्रति आपकी गहरी दिलचस्पी थी। श्री उदयचन्द्र कोठारी आपके द्वितीय पुत्र हैं। आप राजस्थान विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपने साहित्य-विशारद की उपाधि प्राप्त की है। वर्तमान मे श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शान्ति जैन पुस्तकालय के मन्त्री हैं।



श्री नवरतनमल रांका

आपका जन्म २७ सितम्बर १६३३ को व्यावर मे श्री मोतीलाल राका के यहा हुआ। आयकर विशेषज्ञो मे श्री राका का नाम वडे सम्मान के साथ लिया जाता है। आयकर सलाहकार सघ के उपाध्यक्ष एव मन्त्री तथा वार एसोसिएशन की कार्यकारिणी के सदस्य रह चुके हैं। वर्तमान मे आल इण्डिया टैक्स एडवोकेट्स एसोसियेशन नई दिल्ली की कार्यकारिणी समिति के सदस्य, जयपुर वार एसोसिएशन, जयपुर चेम्बर एव सुप्रीम कोर्ट वार एसोसिएशन के सदस्य हैं। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी के मत्री हैं। श्री रांका शात प्रकृति के सेवा भावी व्यक्ति हैं।



श्री उमरावमल चोरड़िया

श्री चोरडिया स्व० श्री स्वरुपचन्द्र चोरडिया के द्वितीय पुत्र है। आपका जन्म २४ नवम्बर १६३१ को हुआ—

कर्त्तव्य की दृष्टि से, प्रेम और तन्मयता से जो सेवा की जाती है—वह समर्पण और आत्मोत्सर्ग की पुनीत भावना मे ओत-प्रोत होती है—श्री चोरडिया का जीवन इसी भावना का प्रतीक है। ज्वेलर्स एसोसिएशन, जयपुर के अवैतनिक मत्री के रूप मे आप अपनी सेवायें दे चुके हैं। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी के सयुक्त मन्त्री के दायित्व का भार निर्वाहन कर रहे हैं—सोसाइटी का विकास और विस्तार आपकी निष्ठा का प्रतिफल है। आप श्री स्वरूपचन्द चोरडिया प्रसूति-गृह के सयोजक भी हैं।



श्री उमरावमल ढड्ढा

श्री ढड्ढा का जन्म १८ नवम्बर १६२३ को श्री गणेशमलजी ढड्ढा के यहा हुआ।

आप मिलनसार, उत्साही और श्रमशील व्यक्ति है। धार्मिक तथा सामाजिक कार्यो मे आपका विशेष झुकाव है। समाज की विभिन्न प्रवृत्तियो मे श्री ढड्ढा अभिरुचि लेते हैं। श्री शान्ति जैन पुस्तकालय और श्री सुबोध वालिका विद्यालय के सदस्य तथा सयुक्त मन्त्री भी रह चुके हैं। जयपुर ज्वेलर्स एसोसिएशन की कार्यकारिणी समिति के वर्षों तक आप सदस्य तथा प्रचार-मंत्री भी रहे हैं। व्यापारिक क्षेत्र मे श्री ढड्ढा की अच्छी प्रतिष्ठा है।

श्री पारसमल डागा



श्री डागा का जन्म पौष कृष्णा १० सवत् १९७९ विक्रमी को स्व० श्री जीवनमल डागा के यहा हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा श्री सुबोध महाविद्यालय मे हुई। श्री डागा का प्रारम्भिक जीवन जवाहरात व्यवसाय के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति भी झुका। स्वाधीनता सग्राम मे आपने सक्रिय भाग लिया। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों मे आपकी अच्छी रुचि है। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति के आप सदस्य तथा परीक्षण प्रयोगशाला के सयोजक भी रह चुके हैं। आप एक उत्साही व्यक्ति हैं। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के सक्रिय कार्यकर्ताओ मे हैं।

श्री चन्द्रसिह बोथरा



राजस्थान की राजधानी भारत के इतिहास प्रसिद्ध नगर के, सामाजिक, एव राजनैतिक कार्यकर्ताओ मे श्री चन्द्रसिह बोथरा का नाम बडे सम्मान के साथ लिया जाता है। सामान्य परिवार मे जन्म लेकर अपने ही सहारे व्यक्तित्व का निर्माण करना इस बात का प्रतीक है कि श्री बोथरा श्रमशील व्यक्ति हैं। आप कई वर्षो तक श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की का का समिति के सदस्य तथा श्री सुबोध बालिका विद्यालय के सयोजक भी रह चुके हैं। श्री बोथरा भवन निर्माण कार्य मे बडे दक्ष है। स्वभाव सरल निर्णय और निश्चय मे दृढ श्री बोथरा का समग्र व्यक्तित्व है।

श्री बंसीलाल जरगड़



श्री बसीलाल जरगड स्थानकवासी समाज के जाने माने सेवाभावी श्रावक हैं। चातुर्मास काल मे सत सतियो के दर्शनार्थ आने वाले बन्धुओ की आवास तथा भोजन व्यवस्था मे आपका सदैव योग रहा है। स्वभाव से सरल, प्रकृति से विनोद प्रिय व्यक्ति हैं।



श्री हरिश्चन्द्र वडेर

श्री हरिश्चन्द्रजी वडेर सुपुत्र श्री पूनमचन्द्रजी वडेर स्थानकवासी समाज जयपुर के प्रसिद्ध बहुमूल्य पाषाण के व्यवसायी हैं-श्रम और निष्ठा के सहारे जीवनयापन करने वाले सात्विक और धार्मिक वृत्ति के श्रावक है। सत साध्वियो की सेवा मे निरन्तर लगे रहना आपके जीवन का एक पावन लक्ष्य रहा है जो इन्हे अपने पिताश्री की देन है।



श्री ज्ञानचन्द्र कोठारी

श्री जैन श्वे० स्थानकवासी समाज के उदीयमान तरुणो मे श्री ज्ञानचन्द्रजी कोठारी की गणना की जाती है। श्रम और स्वावलम्बन के सहारे यश और कीर्ति का अर्जन करना श्री कोठारी की दिनचर्या है। धार्मिक वृत्ति के श्रद्धालु श्रावक है-। सामाजिक तथा व्यावसायिक सब ही क्षेत्रो मे आपका योगदान प्रशसनीय रहा है।



श्री चुन्नीलाल ललवानी

श्री ललवानी का जन्म १४ अगस्त १९२४ को हुआ। आगरा विश्वविद्यालय मे बी. कॉम की परीक्षा पास कर आप लाइफ इश्योरेंस के कार्य मे उतरे तब मे आज तक आप निरन्तर इस क्षेत्र मे अच्छी ख्याति अर्जित कर रहे हैं अहिंसा प्रचार समिति, अखिल भारतीय जैन सामायिक सघ आदि धार्मिक प्रवृत्तियो मे अपूर्व योग दिया है वह सराहनीय है।

श्री घीसीलाल कोठारी

श्री घीसीलालजी कोठारी स्व० श्री केसरीचन्द्रजी कोठारी लाल हाथी वालो के सुपुत्र है। सामाजिक तथा धार्मिक क्रिया कलापो मे आपका सराहनीय योग मिलता है। धर्मपरायण, निष्ठावान श्रावक हैं। जवाहरात आपका पैतृक व्यवसाय है।



श्री गुलाबचन्द्र नवलखा

श्री गुलाबचन्द्रजी नवलखा स्थानकवासी जैन समाज के चिर परिचित धार्मिक श्रद्धावान श्रावक हैं। संत साध्वियो की सेवा मे रत रहना आपकी स्वाभाविक वृत्ति है। सरलता स्वाभाविकता आपके जीवन के विशिष्ट गुण हैं।



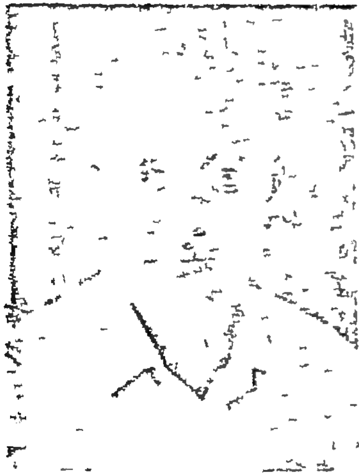
श्री घीसीलाल ढढ्ढा

श्री ढढ्ढा की गणना सेवाभावी श्रावको मे की जाती है। संत सतियो की सेवा तथा दर्शनार्थियो की सुख सुविधा आपकी दिनचर्या है। गृहस्थ मे रहते हुए भी श्री ढढ्ढा साधू का सा जीवन बिता रहे हैं। स्वभाव से सरल, सहज और स्वाभाविक वृत्ति के श्रावक हैं।



डा० एस० आर० मेहता

डा० मेहता की गणना राजस्थान के चोटी के चिकित्सकों में की जाती है। आपका जन्म २३ जून १९३१ को श्री भभूतराजजी मेहता के प्रतिष्ठित घराने में हुआ। M B B S. तथा M D की परीक्षायें पास करके आप राजकीय सेवाओं में प्रविष्ट हुए। वर्तमान में आप सवाई मानसिंह मेडिकल कालेज तथा चिकित्सालय में औषध विभाग के प्रधान तथा व्याख्याता हैं। आप को अपनी विशिष्ट सेवाओं तथा मौलिक गवेषणाओं के लिए राजस्थान सरकार द्वारा 'Merit Pay' दी गई है।



श्री हीरालाल हरकावत

श्री हरकावत का जन्म १३ दिसम्बर १९२७ को स्व० श्री जोधराजजी हरकावत के परिवार में हुआ। आप के पिता भूतपूर्व उदयपुर राज्य के नरेश के निकटतम विश्वसनीय व्यक्तियों में से थे। सन् १९४५ में आप राजकीय सेवाओं में प्रविष्ट हुए। वर्तमान में आप राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री जोशी के निजी सचिव के पद पर कार्य कर रहे हैं। आप सरल स्वभाव के निष्ठावान व्यक्ति हैं।



श्री एस० आर० सिंघी

श्री सिंघी राजस्थान प्रान्त के जाने माने भारतीय प्रशासनिक सेवा के उच्च अधिकारियों में विख्यात हैं। आपका जन्म ३ फरवरी १९२५ को श्री चुन्नीलाल सिंघी सिरोही निवासी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। वाणिज्य में स्नातक होने के उपरान्त आपने एल-एल बी की परीक्षा पास की तथा राजकीय सेवाओं में प्रवेश लिया। वर्तमान में आप विधि सचिव, विधि एवं न्याय विभाग सचिवालय के पद पर हैं।

श्री सिंघी स्वभाव से सरल, सात्विक वृत्ति के व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं। 'कर्त्तव्य ही अर्चना है' का सिद्धान्त आपके जीवन में अक्षरश: उतरा हुआ है।

श्री बाबूलाल पानगडिया



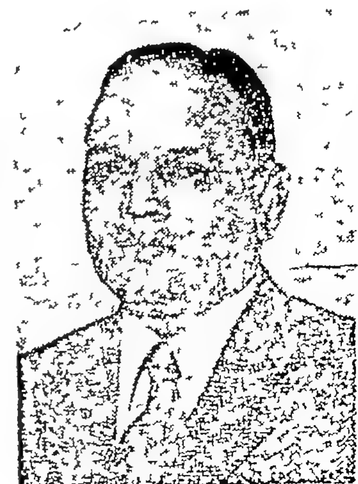
श्री बाबूलालजी पानगडिया का जन्म ३० जून सन् १६२१ को भीलवाडा जिले के सुवाणा ग्राम में हुआ। बी ए एल-एल. बी. की परीक्षा उच्च श्रेणी मे पास की। आपने सन १६४६ मे जयपुर से प्रकाशित लोकवाणी के सम्पादक मण्डल के सदस्य के रूप मे कार्य किया। अग्रेजी दैनिक 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के विशेष सवाददाता रहे। सन् १६४७ मे मुख पत्र 'प्रजा मण्डल पत्रिका' के सम्पादक का पद सम्भाला। सन् १६४८ मे राजकीय सेवा मे प्रवेश किया। आप इस समय राजस्थान सरकार के वित्त विभाग मे उप-सचिव के पद पर कार्य कर रहे हैं। शिक्षा और सामाजिक सेवा मे आप अग्रणी हैं।

श्री रणजीतसिंह कूमट



श्री रणजीतसिंह कूमट भारतीय प्रशासनिक सेवा के उच्च अधिकारी हैं। वर्तमान मे आप अजमेर जिले के जिलाधीश पद पर कार्य कर रहे हैं। आपका जन्म ६ जुलाई १६३८ को श्री कानमलजी कूमट विजयनगर मे हुआ। सन् १६६२ मे I. A S प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण करने के पश्चात् प्रशिक्षण मे गये तथा राजस्थान सेवा मे आये—आपने राजस्थान शिक्षा-विभाग के विभागाध्यक्ष पद पर रहते हुए जो कार्य किया है वह आपकी सूझ-बूझ का परिचायक है।

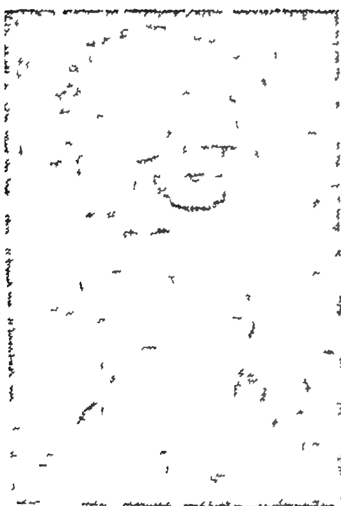
डॉ० बी० एस० चंडालिया



डॉ० चडालिया राजस्थान के गणमान्य चिकित्सकों में से हैं। आपका जन्म १६ मार्च १६३२ को श्री मदनसिहजी चडालिया के हुआ। श्री चडालिया ने M. B, B S, M S (Gen Surg और Plastic Surg) करने के उपरान्त राजकीय सेवाओ मे प्रवेश लिया तब से आज तक श्री चडालिया चिकित्सा के क्षेत्र मे निरन्तर यश अर्जित करते जा रहे हैं। वर्तमान मे आप सवाई मानसिह कालेज तथा चिकित्सालय मे Plastic व Reconstructive शल्य चिकित्सा विभाग के प्रधान तथा प्रवक्ता हैं। स्वभाव और प्रकृति मे सरल, सदा प्रसन्न मुद्रा मे रहने वाले चिकित्सक हैं।

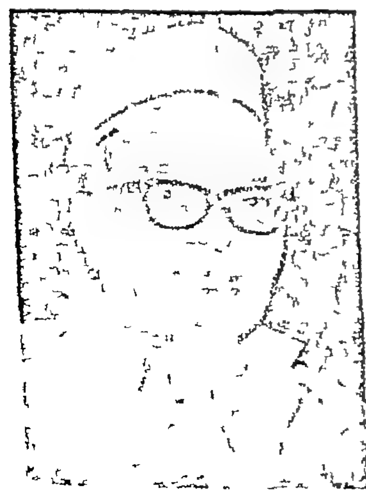
श्री देवेन्द्रराज मेहता आई. ए. एस.

श्री मेहता का जन्म २५ जून १९३७ को श्री हनुवन्तराजजी मेहता के प्रसिद्ध परिवार जोधपुर मे हुआ । बी ए. एल. एल बी की परीक्षा पास कर १९६१ मे श्री मेहता ने भारतीय प्रशासन सेवा मे प्रवेश किया । वर्तमान मे आप मुख्य मत्री के सचिव पद पर कार्य कर रहे है । आप कर्त्तव्य निष्ठ धार्मिक तथा राष्ट्रीय भावो से परिपूर्ण प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी है ।



श्री सत्यप्रसन्न सिह भंडारी
एम ए. आई. ए एस.

श्री भडारी का जन्म दिनाक १८ १-१९१८ को स्व० श्री मनोहर सिहजी भडारी के यहा हुआ अर्थशास्त्र मे एम ए. उत्तीर्ण करके आपने राजस्थान प्रशासनिक एवं भारतीय प्रशासनिक सेवा मे प्रवेश किया । आप राजस्थान के विभिन्न जिलो के जिलाधीश, आयुक्त तथा उदयपुर विश्व-विद्यालय के उपकुलपति पद को सुशोभित करके अभी हाल ही मे सेवा निवृत्त हुये है। गम्भीर प्रकृति के धार्मिक निष्ठा के श्रावक है ।



श्री सोहलाल कोठारी

जन्म दिनाक १६-८-१९१८ निर्वाण तिथि २६-५-७३ स्व० श्री मोहनलाल कोठारी सुपुत्र श्री रतनलालजी कोठारी की गणना स्थानकवासी जैन समाज के जैन आगम साहित्य के सकलन कर्त्ताओ मे की जाती है । श्री विनयचन्द ज्ञान भडार की स्थापना के साथ श्री कोठारी सम्बद्ध थे । आपने स्थान-स्थान पर जाकर, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो को उपलब्ध करने तथा शोध सस्थान को उपयोगी बनाने मे तन मन और धन से अपनी सेवाये दी है । वे धुन के पक्के और मनसूबो के मजबूत इन्सान थे ।

स्व० श्री गुमानमल लुणावत



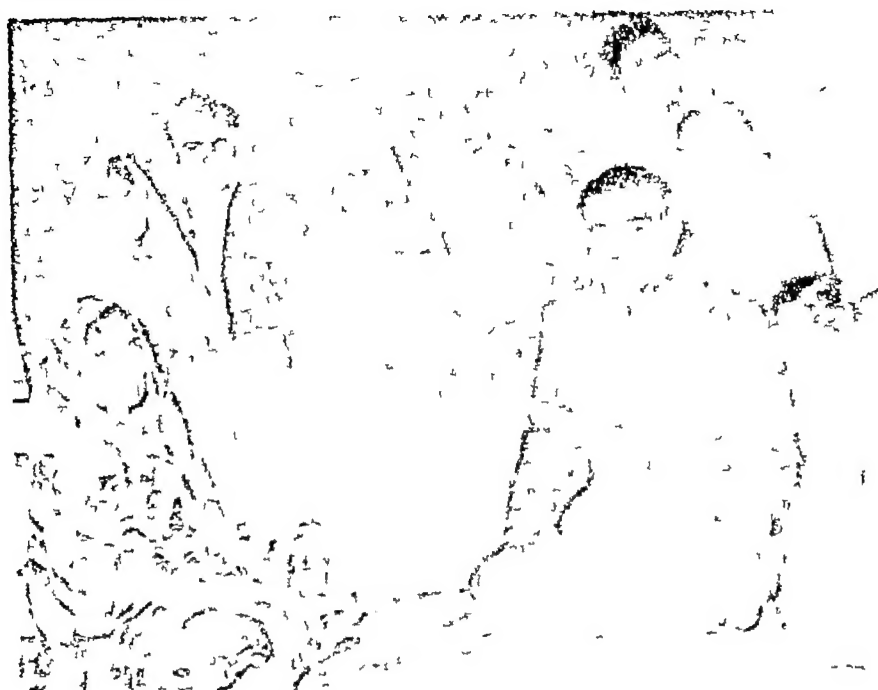
स्व० श्री जोरावरमलजी लुणावत के सुपुत्र स्व० श्री लुणावत एक धार्मिक वृत्ति के निष्ठावान श्रावक थे। आपका समग्र जीवन, त्याग, तपस्या तथा सेवा का उत्कृष्ट उदाहरण था। आज उन्ही के तप के पुण्य का प्रतिफल है कि आपके तीनो पुत्र तथा पुत्रिया जीवन के सब ही क्षेत्रो मे आशातीत प्रगति की ओर अग्रसर है। आपकी धर्म पत्नी श्रीमती इचरज कुवर स्वय का तपस्या के पावन क्षेत्र में भगवान महावीर के पश्चात् सम्भवत. इतना लम्वा अनशन तप करना स्वय मे एक अभिनन्दनीय कार्य है। वे आत्मोत्कर्प के मार्ग की ओर उन्मुख है।



श्री ज्ञानेन्द्रकुमार लुणावत, श्री उत्तमचन्द्र डागा

श्री डागा तथा श्री लुणावत इस वर्ष विश्व धर्म सम्मेलन मे श्री सघ के प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुए। श्री डागा श्री पारसमलजी डागा के सुपुत्र हैं। स्पष्टवादिता आपका विशिष्ट गुण है।

श्री ज्ञानेन्द्र कुमार लुणावत श्री देवेन्द्र कुमार लुणावत के चचेरे भाई है। उत्साही कार्य कर्त्ता हैं धार्मिक रुचि और कर्त्तव्य निष्ठा आपका विशेप गुण है।



अपने परिवार के साथ
महान् तपस्विनी श्रीमती इचरज कुंवर लुणावत

तीनो पुत्र :

- श्री महेन्द्रकुमार लुणावत
- श्री वीरेन्द्रकुमार लुणावत
- श्री देवेन्द्रकुमार लुणावत

तीनो पुत्रवधु :

- श्रीमती कचन कुवर
- श्रीमती शकुन्तला देवी
- श्रीमती मंजुला देवी

एवं सुपुत्री पानबाई — व कुमारी अनिता

• श्री देवेन्द्रकुमार एक उभरते हुए व्यक्तित्व के धनी हैं—आप हाल ही मे युवक काग्रेस के सर्व-सम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित हुये हैं— तथा कई शिक्षण सस्थाओ के सहयोगी-सरक्षक भी हैं।

श्रीमती इचरज कुंवर धर्मपत्नी श्री गुमानमल लुणावत

का

१६५ दिन के अनशन तप

की पूर्ति के

पावन अवसर पर सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

परम आदरणीया !

आप जैसी धर्मपरायण एव त्यागमयी तपस्विनी का इस परम पावन अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन करते हुए समस्त जैन समाज गौरव का अनुभव करता है और अपने आपको धन्य मानता है। आपने इस भौतिकतावादी युग मे निरन्तर १६५ दिन का अनशन तप करके एक महान् साधना की है तथा स्वार्थ परायण युग की समस्त मान्यताओ व धारणाओ को झकझोर डाला है। अपने अद्वितीय आत्मवल से महान् सकल्प को साकार रूप दिया है, जिसे देखकर व सुनकर विश्व के महान् साधक भी आश्चय चकित हो सकते हैं। भगवान् महावीर के जगद्विख्यात चारित्र का अनुकरण करके आपने न केवल अपने जीवन को ही सफल वनाया है, अपितु जिन शासन मे निष्ठा रखने वाले सम्पूर्ण समाज का भी मान वढाया है। आपकी इस महती तपश्चर्या की सफलता के अवसर पर श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ हर्ष विभोर हो उठा है।

तप की अनन्य आराधिके !

वाहर मे रहा हुआ अनशन तप जव समभाव की अन्तर धारा से आवद्ध हो जाता है तो वह आत्म रूप वन जाता है। इस प्रकार आत्मा के साथ एकाकार हुआ तप नये कर्मो के वन्धन को रोकता है तथा पूर्व के वन्धन क्षीण करता है। आगम की भाषा मे इसे सवर और निर्जरा कहते हैं। आप जीवन के सौरभमय वसन्त से ही तप और त्याग की ओर उन्मुख रही हैं। बेला, तेला, चौला, अठाइया, मास खमण तथा ५१ और ६२ दिन की तपस्या आपके तपोमय जीवन के अनुक्रम रहे हैं।

१६५ दिन का अनशन तप निश्चय ही लोकातीत दृष्टि है। लोकातीत दृष्टि ही वीत-राग दृष्टि है। आपका यह प्रयास वस्तुत अभिनन्दनीय ही नही अपितु स्तुत्य भी है।

सम्यग् चरित्र की आराधिका !

जैन-दर्शन मोक्ष के तीन साधन बतलाता है सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। समस्त कर्मों का सर्वतोभावेन नष्ट हो जाना मोक्ष या मुक्ति है। कर्म-मल-विमुक्त आत्मा ही जैन दर्शन के अनुसार अन्त मे परमात्मा हो जाता है। आप मुक्तिपथ की ओर दृढता से बढ रही हैं। आपके जीवन का प्रत्येक आचरण सम्यग् चारित्र की ओर इगित है। आप जैसी तपस्विनी, श्रमण सस्कृति की उपासिका पर समग्र जैन समाज अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है।

आदर्श श्राविके !

क्षमा जिसके हृदय मे बस गई हो, मन जिसके काबू मे हो, इन्द्रियो को जिसने जीत लिया हो और आत्मचिन्तन मे जो सदा लीन रहता हो वही सच्चा श्रावक है। आपकी समस्त दिनचर्या श्रावक धर्म की अनुपालना से ओतप्रोत है। इस भोग प्रधान युग मे वस्तुत यह त्याग के दुष्कर तप का अवलम्बन सन्तो की भाषा मे असिधारा व्रत है। आपने उसे अगीकृत कर बन्धन मुक्ति के लिये पुरुषार्थ किया है—वह वन्दनीय है।

सत् सकल्पो की धनी !

सकल्पो से जीवन का निर्माण होता है—उनकी पावनता और उन्मेषता तप-भाव का उन्नयन है। आपके दृढ सकल्प अनासक्त भाव मे की हुई प्रवृत्ति का परिचायक है—वह आत्म शुद्धि के सातत्य का कारण है।

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के समस्त सदस्य आप जैसी आदर्श, तपस्विनी, त्यागी श्राविका पर गर्व की अनुभूति करते हैं। सच तो यह है कि आपका समग्र जीवन त्याग और तप का अनूठा समुच्चय है और प्रेरणा का श्रोत।

ससम्मान—

विनीत
आपके तपोमय दीर्घ जीवन के
आकाक्षी
समस्त सदस्य

दिनाक २२–१२–७४